वाहनसे इस स्थानमें उपस्थित होते हैं। इन्द्र प्रभृति लोकपाल और मरीच्यादि महर्षिगण भी मध्याह्निकक्रियानुष्ठानके लिये स्वर्गसे मणिकर्णिका आते हैं। अनन्त और वासुकि प्रभृति नागगण भी मध्याह्नके समय स्नान करनेके लिये नागलोकसे मणिकर्णिका आते हैं। अधिक क्या कहूं, चराचरके भीतर जितने सचेतन प्राणी हैं, वह सभी मणिकर्णिकाके निर्मल सलिलमें स्नानके लिये मध्याह्नके समय उपस्थित होते हैं। हे द्विजवर! मैं भी जो निर्णय करनेमें असक्त हूं, मणिकर्णिकाका वह महान् गुण-निचय प्रकाश करनेमें कौन समर्थ होगा? जो चरमासयमें मुक्तिक्षेत्र मणिकर्णिका पानेमें सक्षम हैं, वह सब तपोधन ही अरण्यमें रहकर प्रकृत तपःसञ्चय करते हैं। जो परिणाममें इस मणिकर्णिकाको पाते हैं, उन सब महात्माओंने ही यथार्थ बहुविध दान किया है। उन सब व्यक्तिने ही निखिल यथासमय व्रतनिचय उद्यापन किया है, जो चरमकालमें मणिकर्णिकाका पवित्रभूभाग अपनी सकोमल शय्यारूपमें परिणत करनेमें सक्षम हैं, जो स्वसुकृतिलब्ध समस्त सम्पत्ति परित्यागकर चरममें मणिकर्णिकाको अवलोकन करते हैं, वही यथार्थ यज्ञमें दीक्षित होते और वही इस संसारमें धन्यवादके पात्र हैं। जो मनुष्य वृद्धावस्थामें मणिकर्णिकाको प्राप्त हों, उन्होंने यथार्थ इष्टापूर्त प्रभृति बहुविध धर्म्मकार्य्यका अनुष्ठान किया है। विवेचक व्यक्ति इस मणिकर्णिकामें सदा यत्नके साथ रत्न,काञ्चन, वस्त्र, हस्ती और अश्व दान करें। मुनिवर! मनुष्य यदि मणिकर्णिकामें धर्म्मोपार्ज्जित अत्यल्पमात्र वस्तु भी प्रदान कर सकें, तो वह भी अत्यन्त फलजनक होता है। जो मनुष्य, मात्र एकबार भी यहां यथाविधि प्राणायाम करते हैं, उन्हें उत्कृष्टतम षडङ्ग योगसाधनका फल मिलता है और जो मात्र एकबार मणिकर्णिकामें गायत्री जप करें, तो उन्हें दशसहस्र गायत्री जपनेका फल मिलता है। आग्नव्यक्ति यदि मणिकर्णिकामें उपवेशनकर एकबार आहुति दान करें, तो उन्हें आजीवनानुष्ठित अग्निहोत्रका पुण्य मिलता है। कार्त्तिकेयने कहा, तीव्रतपा अग्निविन्दुने भगवान् नारायणकी ऐसी बातें सुनकर भक्तिभावसे केशवको प्रणामकर फिर पूछा,— हे माधव! यह कहिये, कि इस मणिकर्णिकाकी सीमा कहांतक है; कारण, आपकी अपेक्षा और कोई इस तत्त्वको नहीं जानता। फिर भगवान् विष्णुने कहा, मुने! हरिश्चन्द्रमण्डप, गङ्गाकेशव, गङ्गाका मध्यस्थल और स्वर्गद्वारका मध्यवर्त्ती जो स्थान है, वही मणिकर्णिका है, यह स्थूलरूपसे वर्णन किया; सम्प्रति सूक्ष्म परिमाण कहता हूं, सुनो। हरिश्चन्द्रतीर्थके सामने हरिश्चन्द्र गणेश अवस्थित हैं और ही मणिकर्णिका नामक ह्रदके उत्तर

सोमागणेश विराजमान हैं। जो व्यक्ति मोदकादि नानाविध उपचारसे भक्तिपूर्व्वक इन सोमागणेशको अर्च्चना करते हैं, वह मणिकर्णिका पानेमें समर्थ हैं। जो हरिश्चन्द्र महातीर्थमें पितृगणोद्देशसे तर्पण करते हैं, उनके पितृगण शतवर्ष परितृप्त रह वाञ्छित फल प्रदान करते हैं। जो मनुष्य श्रद्धापूर्व्वक हरिश्चन्द्रमहातीर्थमें स्नान कर हरिश्चन्द्रेश्वरको प्रणाम करते हैं, उन्हें कभी सत्यसे स्खलित होना नहीं पड़ता। इसके उपरान्त पर्व्वतेश्वरके समीप महापापनाशन, महामेरुको आवासभूमि पर्व्वततीर्थ विराजमान हैं। जो मनुष्य वहां स्नानकर पर्व्वतेश्वरको अर्च्चनापूर्व्वक यथाशक्ति थोड़ा भी दान करते हैं, वह सुमेरुशिखरपर अवस्थान करते हुए सब दिव्यभोग उपभोग कर सकते हैं। उक्त पर्व्वतेश्वरके दक्षिण कम्बलाश्वतर नामक एक तीर्थ है; इस तीर्थके पश्चिम कम्बलाश्वतरेश्वर नामक एक शिवलिङ्ग अवस्थित हैं। मनुष्यगण इस तीर्थमें स्नानकर उन विशुद्ध शिवलिङ्गकी अर्च्चना करनेसे, उनके वंशमें जो व्यक्ति जन्म पाते हैं, वह गानदक्ष और औरसम्पन्न होते हैं, वहां संसारके मनाशिनी चक्रपुष्करणी नामक एक पुष्करणी है; जो मनुष्य उस चक्रपुष्करणीमें स्नान करते हैं, उन्हें फिर संसारचक्रमें प्रविष्ट होना नहीं पड़ता। उक्त चक्रपुष्करणीतीर्थ मेरा प्रधान वासस्थल है। पहले मैंने इस तीर्थमें परार्द्धपरिमित वर्ष घोरतर तपस्याकर परमात्मा विश्वनाथका दर्शन अविनश्वर और महत् ऐश्वर्य्य लाभ किया था। यह चक्रपुष्करिणी ही मणिकर्णिका नामसे प्रसिद्ध है। वहां मणिकर्णिकाने निजद्रवरूपता परित्यागकर और नारीरूप धारणकर मुझे प्रत्यक्ष दर्शन दिया था। अब मैं भक्तोंका मङ्गलप्रद उनके रूपका वर्णन करता हूं; मानव, छः महीने विसन्ध्या ध्यान करनेसे उनका प्रत्यक्ष दर्शन पा सकते हैं। उन विशालनयना रमणीके चार हाथ हैं, दक्षिणकरमें नीलकमलका माला और वामकरमें पवित्र मातुलुङ्ग फल और ललाटमें तृतीयनेत्र शोभा पा रहे हैं; वह सदा करपुट संलग्नकर पश्चिमाभिमुख अवस्थान करती हैं। कुमारीरूपधारिणी वह ललना सदा द्वादशवर्षीया हैं और वह एक हाथसे वर प्रदान करती हैं। शुद्धस्फटिक सङ्काशा उन अबलाका केशपाश सुनील और और सुस्निग्ध है; उसमें विकच केतकी कुसुम विराजित हैं। ओष्ठाधर प्रवाल और माणिक्यके भी सौन्दर्य्यहारी हैं, सब शरीरमें मुक्तालङ्कार, हृदयमें दो कुङ्कुमान परम रमणीय पङ्कजमाला और परिधान शुभ्र वसन विकाश पाता है। जो मोक्षपदके अभिलाषी हैं, वह उन निर्व्वाणदात्री सौन्दर्य्यमयी मणिकर्णिकाको इसीरूपमें सदा चिन्ता करेंगे। इस समय, जिसका ध्यान करनेसे मनुष्यको अष्टविध सिद्धि मिलती है,

भक्तवत्सलगन मणिकर्णिकाका वह मन्त्र कहता हूं, सुनो। पहले प्रणव उच्चारण कर क्रमसे सरस्वतीवीज, भुवनेश्वरीबीज लक्ष्मीबीज और कामबीज उच्चारणकर फिर "मणिकर्णिकायै नमः" और अवशेषमें प्रणव उच्चारण करेंगे। कल्पतरूपम सुख-सम्पत्तिदायक इस मन्त्रके जपप्रभावसे साधुशील मानवगण, परमपदलाभमें समर्थ होते हैं। दूसरे मन्त्रमें—पहले प्रणव, मध्यमें "मं मणिकर्णिकायै नमः" और अन्तमें फिर प्रणवका जप करना होता है। मोक्षाभिलाषी मनुष्योंको सदा इसका जप करना विधेय है और पवित्रता और श्रद्धाके साथ घृतमधुशर्करायुक्त पद्म द्वारा जपदशांश होम करना कर्त्तव्य है। मनुष्य यदि तीनलाख बार इस मन्त्रका जप कर सकें, तो देशान्तरमें मृत्यु होनेपर भी इसके प्रभावसे उन्हें मुक्ति मिलती है। मानव, अयत्न उल्लिखित ध्यानानुरूप मणिकर्णिकाकी नवरत्नान्वित स्वर्णमयी प्रतिमा निर्माण करा उसकी अर्चना करेंगे। जो सब मनुष्य, अपने मोक्षपदके अभिलाषी हैं, वह ऐसी ही प्रतिमा बनवा कर प्रतिदिन अपने घरमें उसकी पूजा करें या अयत्न अर्चनापूर्वक मणिकर्णिकामें समर्पण करें। जो व्यक्ति, संसारभयसे भीत हैं, काशीसे स्थानान्तरित होनेपर भी ऐसा उत्तम उपाय अवलम्बन करना उनको विधेय है। जो व्यक्ति, मणिकर्णिकामें स्नानकर मणिकर्णिकेश्वरका दर्शन करते हैं, वह दूसरी बार गर्भयन्त्रणा नहीं भोगते। पहले मैंने जो अन्तर्गृहके पूर्वद्वारमें मणिकर्णिकेश्वर नामक शिवलिङ्ग प्रतिष्ठित किया है। मुक्तिप्रार्थी मनुष्योंका उनकी पूजा करना कर्त्तव्य है। पाशुपत नामक तीर्थ, मणिकर्णिकाके पश्चिम अवस्थित है; वहां उदककार्य्यकर पशुपतीश्वरका दर्शन करना मनुष्यका उचित कार्य्य है। वहां भगवान् शङ्करने मुझे और ब्रह्मादि अमरगणको मायारूपबन्धननाशन पाशुपत योगकी शिक्षा दी थी। जीवगणके मायापाशमोचनार्थ आज भी स्वयं भगवान् शङ्कर लिङ्गरूपमें वहां अवस्थित हैं। जो मानव, चैत्रमासकी शुक्लपक्षीय चतुर्दशीमें विशुद्धभावसे यत्नके साथ वहां जाकर उपवासी रह रात्रिजागरणपूर्व्वक पशुपतीश्वरकी अर्चना कर दूसरे दिन अमावस्याको पारण करते हैं, उन्हें मायापाशमें जड़ित होना नहीं पड़ता। उक्त पाशुपततीर्थके बाद रुद्रावास नामक तीर्थ है; मनुष्य वहां स्नानकर रुद्रावासेश्वर नामक महेश्वरकी अर्चना करें। रुद्रावासेश्वर महादेव, मणिकर्णिकेश्वरके दक्षिण अवस्थित हैं; उनकी अर्चना करनेसे मानव निःसन्देह रुद्रालयमें वास करते हैं। श्वेतनामक तीर्थ, उक्त रुद्रावासतीर्थके दक्षिण विराजित हैं; वहां समुदय तीर्थका अधिष्ठान है। जो व्यक्ति, उस श्वेततीर्थमें स्नानके उपरान्त भक्तिपूर्ण हृदयसे विश्वेश्वरका दर्शनकर भक्ति-

भावसे विश्वागौरीकी अर्चना करते हैं, वह विश्वके पूजनीय और विश्वमय होते हैं। इसके उपरान्त मुक्ततीर्थ है। जो मनुष्य वहां स्नानकर मोक्षेश्वर महेश्वरकी अर्चना करते हैं, वह निश्चय मोक्षपद पानेमें समर्थ होते हैं। उक्त मोक्षेश्वर, अविमुक्तेश्वरके पीछे अवस्थित हैं; जो व्यक्ति, उनका दर्शन करते हैं, उन्हें फिर संसारयन्त्रणा भोगना नहीं पड़ती। अविमुक्तेश्वर तीर्थ, मुक्ति-तीर्थसे थोड़ी दूरपर अवस्थित है; जो नर उस तीर्थमें स्नानकर अविमुक्तेश्वर महेश्वरकी अर्चना करते हैं, वह संसारबन्धनसे मुक्त होते हैं। इसके उपरान्त तारक-तीर्थ है। इस तीर्थमें स्वयं विश्वनाथ, मुमुर्षु व्यक्तिके कर्णकुहरमें अमृतमय तारकब्रह्मका उपदेश करते हैं। जो मनुष्य, वहां स्नानकर तारकेश्वरका दर्शन करते हैं, वह स्वयं भवसमुद्रसे उत्तीर्ण होते और अपने पितृगणको भी तारण करते हैं। स्कन्दतीर्थ, उक्त तारकतीर्थके सन्निकटवर्त्ती है; जो मानव, उस तीर्थमें स्नानकर कार्त्तिकेयका दर्शन करते हैं, वह फिर षट्कोष-युक्त देह धारण नहीं करते। तारकेश्व-रके पूर्व्व अवस्थित कार्त्तिकेयका दर्शन कर-नेसे मनुष्य कार्त्तिकेय लोकमें वास करते हैं। इसके उपरान्त विश्रुत ढुंढितीर्थ है; जो व्यक्ति वहां स्नानकर ढुंढिराज गजाननका स्तव करते हैं, उनपर किसी प्रकारका विघ्न आक्रमण करने नहीं पाता।

उक्त ढुंढितीर्थके दक्षिण अतुलनीय भवानी-तीर्थ है; वहां स्नानकर भवानीकी अर्चना-पूर्व्वक वसन, भूषण, रत्न, विविध नैवेद्य; कुसुम, धूप और दीपमाला द्वारा भवानी और महेश्वरकी अर्चना करें। जो मानव श्रद्धापूर्व्वक काशीधाममें भवानी और भवकी अर्चना करते हैं, सचराचर त्रिभु-वन ही उनके द्वारा अर्चित होता है। जो व्यक्ति, चैत्रशुक्लपक्षीय अष्टमीको भवानीकी महायात्राकर अष्टोत्तर शतवार देवीका प्रदक्षिणा करते हैं, वह समुदय आश्रम और अरण्यसमन्विता ससागरा सप्तद्वीपा वसुधा प्रदक्षिणा कर चुके। मनुष्यगण सन्तुष्ट-हृदयसे प्रतिदिन वहां आठ बार प्रदक्षिणा और सदा सयत्न शङ्करके साथ भवानीको नमस्कार करें। भवानी सदा भक्तवृन्दका मनोरथ सफल करती हैं और काशीधा-ममें अवस्थान करती हैं, इसलिये जो काशी-वासी हैं, सदा उन्हें उनको प्रणाम करना चाहिये। वह काशीवासियोंका सदा मङ्ग-लसाधन करती हैं इसलिये सदा उनकी सेवा करना उन्हें उचित है। उक्त काशी-धाममें जब स्वयं शङ्करगेहिनी शङ्करी भिक्षा प्रदान करती हैं, तो भिक्षुक मोक्षाभिलाषी होनेपर भी सदा भिक्षा करें। काशीधा-ममें स्वयं भगवान् शङ्कर, गार्हस्थ्यधर्म्ममें अवस्थित और उनकी अर्द्धाङ्गभागिनी शङ्करी काशीवासियोंको मोक्षरूप भिक्षा दान करती हैं। काशीवासियोंको यदि कुछ

दुर्लभ हो, तो भवानीकी अर्चना करनेसे वह उसे सुलभ करती हैं, जो मानव, चैत्रमासीय महाष्टमी तिथिको संयत रह रजनी-जागरणपूर्व्वक प्रातःकालमें भवानीकी अर्चना करते हैं, उन्हें अभीष्टफल मिलता है। शुक्रेश्वरके पश्चिम विराजमाना भवानीका दर्शन करनेसे निःसन्देह सब अभीष्ट सिद्ध होता है। सदा काशीधाममें वास, उत्तरवाहिणी भागीरथीमें स्नान और हरपार्व्वतीकी सेवा करनेसे ऐहिक समुदय सुखभोग और अन्तमें मुक्तिपद मिलता है; सोते, जागते, जाते, रहते, सब अवस्थामें ही काशीवासी मानवगण सुखलाभार्थ इस मन्त्रका जप करें, "हे मातः भवानि! मैं तुम्हारे पादपद्मकी धूलि बनूं; हे मातः भवानि! मैं आपके सेवकोंमें प्रधान बनूं; हे मातः भवानि! फिर मुझे संसारक्लेश पाना न पड़े, सदा आपकी सेवा कर सकूं।" भवानीतीर्थके कुछ दूरपर ईशानतीर्थ है; वहां स्नान कर ईशानेश्वरकी अर्च्चना करनेसे फिर जन्म नहीं होता। वहां ही ज्ञानतीर्थ भी अवस्थित है, जो मनुष्योंको सदा ज्ञान प्रदान करता है। जो उस तीर्थमें स्नान करनेके उपरान्त ज्ञानवापीके निकटस्थ ज्ञानेश्वरकी अर्च्चना करते हैं, उनका ज्ञान मृत्युके समय भी विनष्ट नहीं होता। वहां ही निरतिशय समृद्धिप्रकाशक शैलादितीर्थ विराजमान हैं

जो मनुष्य इस तीर्थमें श्राद्धादिकार्य्य समाप्तिके उपरान्त यथासाध्य दानकर ज्ञानवापीके उत्तरभागस्थ शैलादीश्वर महेश्वरका दर्शन करते हैं, वह निःसन्देह महादेवके अनुचरस्वरूपमें परिणत होते हैं। नन्दीतीर्थके दक्षिण विष्णुतीर्थ अवस्थित है; यह स्थान मुझे परमप्रिय है। जो मानव वहां पिण्डदान करते हैं, वह पितृगणके ऋणसे मुक्त होते हैं। विष्णुतीर्थमें स्नानकर विश्वेश्वरके दक्षिणपार्श्वस्थ मेरा दर्शन करनेसे, मनुष्य विष्णुलोकमें रहते हैं। शयन और उठकर एकादशीको उपवासी रह मेरी मूर्त्तिके पास रात्रिजागरणकर दूसरे दिन प्रातःकाल जो भक्तिभावसे मेरी अर्च्चनाकर ब्राह्मणोंको भोजन करा स्वर्ण, गो और भूमि दान करते हैं, उनका फिर भूमण्डलमें जन्म नहीं होता। जो बुद्धिशाली मनुष्य अर्थ विषयमें शठता न कर, विष्णुतीर्थमें व्रत उद्यापन कर सकें, वह मेरे आदेशसे सम्पूर्णरूपसे व्रतके फलभागी होंगे। मेरे तीर्थके उत्तर मङ्गलप्रद पैतामहतीर्थ है, जो व्यक्ति वहां श्राद्धके विधानानुसार पितृगणका तृप्तिसाधनकर ब्रह्मनालके ऊपर अवस्थित पितामहेश्वर नामक महेश्वरकी भक्तिभावसे अर्च्चना करेंगे, उन्हें ब्रह्मलोक मिलेगा। ब्रह्मतीर्थके पास जो कुछ सत् या असत् कार्य्य किया जाय, वह सब अक्षय होते हैं, इसलिये वहां केवल सत्कार्य्य करना ही विधेय है। मुनि-

वर ! यहां जितने सामान्य सत् या असत् कर्म्म हों, प्रलयमें भी उनका चय नहीं होता । इस तीर्थके भूमण्डलका नाभिस्वरूप होनेकी वजह सभी इसे नाभितीर्थ कहते हैं। केवल भूमण्डलका ही क्यों, सब ब्रह्माण्डका नाभिस्वरूप है। इसको ही लोग मणिकर्णिकेयी नाभि कहते हैं ; समुदय ब्रह्माण्ड इस स्थानमें ही समुद्भूत और विलयको प्राप्त होता है। त्रिजगन्मान्य ब्रह्मनाल अति प्रधान तीर्थ गिना जाता है, जो मनुष्य इस तीर्थसङ्गममें स्नान करते हैं, उनका कोटि जन्मार्ज्जित पाप विनष्ट होता है। जिनकी सामान्य अस्थि भी ब्रह्मनालमें पतित हो, उन्हें फिर ब्रह्माण्डमें प्रवेश करना नहीं पड़ता। उक्त ब्रह्मनालके दक्षिण भागीरथतीर्थ विराजमान है ; जो व्यक्ति वहां स्नान करते हैं, उनका ब्रह्महत्या पातक भी सम्पूर्णभावसे दूरीभूत होता है ; स्वर्गद्वारके निकटस्थ भागीरथीश्वर शङ्करका दर्शन करनेसे ब्रह्महत्याजनित पातकका पुरश्चरण होता है। सब पूर्व्वपुरुषोंके अधोगामी होनेपर उसके उद्देशसे भागीरथ तीर्थमें जलाञ्जलि दान करें और वहां यथाविधि श्राद्धकार्य्य-समाधानके उपरान्त द्विजगणको भोजन करानेसे उनके पितृलोग ब्रह्मलोक पाते हैं। उल्लिखित भागीरथतीर्थके दक्षिण खुरकर्त्तरि नामक तीर्थ विद्यमान है, पहले गोलोकधामसे गोगणने यहां उपस्थित हो खुर-निकरसे इस भूभागको खोदा इससे इसका नाम खुरकर्त्तरि हुआ। जो व्यक्ति स्नानके उपरान्त इस तीर्थमें पितृगणोद्देशसे पिण्ड और जलाञ्जलि प्रदानकर, खुरकर्त्तरीश्वर नामक भवानीपतिका दर्शन करते हैं, उनका गोलोकधाममें वास होता है और उनको अर्च्चना करनेसे फिर कभी गोलोकसे पतित होना नहीं पड़ता। इस तीर्थके दक्षिण मार्कण्डेय नामक पापविनाशन एक प्रधान तीर्थ है। वहां श्राद्धादिकार्य्य समाप्त होनेके उपरान्त मार्कण्डेयेश्वर नामक महादेवका दर्शन करनेसे मनुष्यको दीर्घजीवन और विमल यश मिलता है और ब्रह्मतेज वर्द्धित होता है। इसके उपरान्त महापापहारी वशिष्ठ नामक एक प्रधान तीर्थ है, जो मनुष्य वहां पितृगणको जलदानसे परितृप्तकर वशिष्ठेश्वर नामक महेश्वरका दर्शन करते हैं, वह त्रिजन्मोपार्ज्जित पापराशिसे विमुक्त और ब्रह्मतेजसम्पन्न हो वशिष्ठलोकमें अवस्थान करते हैं। वहीं अरुन्धती नामक तीर्थ विराजमान है ; यह तीर्थ रमणियोंका सौभाग्यप्रद है। जो सब ललना पतिपरायणा हैं, उन्हें वहां स्नान करना अवश्य कर्त्तव्य है। कारण, ऐसा करनेसे अरुन्धतीके माहात्म्यबलसे मुहूर्त्तमें व्यभिचार दोष विनष्ट होता है। जो मनुष्य, मार्कण्डेश्वरके पूर्व्व वशिष्ठेश्वर महादेवकी अर्च्चना करते हैं, उनका समुदय

पाप विनष्ट हो प्रभूत पुण्यसञ्चय होता है। जो रमणी वहां वशिष्ठ और अरुन्धतीकी प्रतिमूर्त्तिकी पूजा करती हैं, वह कभी विधवा नहीं होतीं और उनकी पूजा करनेसे पुरुषको कभी स्त्रीवियोगयन्त्रणा भोग करना नहीं पड़ती। उक्त वशिष्ठतीर्थके दक्षिण नर्म्मदा तीर्थ है, जो व्यक्ति वहां श्राद्धादि कार्य्य समाप्तकर नर्म्मदेश्वर नामक भद्रेश्वरका दर्शन और महादान प्रदान करते हैं, उन्हें कभी लक्ष्मीविहीन होना नहीं पड़ता। इसके उपरान्त त्रिसन्ध्येश्वर महादेवके पूर्व्व त्रिसन्ध्या नामक एक तीर्थ है। उस तीर्थमें यथाविधि स्नानकर सन्ध्यावन्दन करनेसे मनुष्यको सन्ध्यावन्दनके समयातिपातके लिये पातकमें पतित होना नहीं पड़ता। जो ब्राह्मण वहां श्रद्धापूर्व्वक त्रिकालीन त्रिसन्ध्या उपासनाकर त्रिसन्ध्येश्वरका दर्शन करते हैं; वह तीन वेद पढ़नेसे जो पुण्य होता है, उस पुण्यके अधिकारी होते हैं। इसके उपरान्त योगिनीतीर्थ है; उस तीर्थमें स्नानके उपरान्त योगिनीश्वर महादेवका दर्शन करनेसे योगसिद्धि मिलती है। वहीं अगस्त्यतीर्थ विराजमान हैं; यह तीर्थ जीवगणकी कलुषराशिका नाश करता है। जो मनुष्य वहां स्नानकर अगस्त्येश्वरका दर्शनकर अगस्त्यकुण्डमें पितृगणके उद्देशसे तर्पणकर अगस्त्य और लोपामुद्राको प्रणाम करते हैं, वह सब पाप और क्लेशसे विमुक्त हो पितृगणके साथ शिवलोकमें अधिष्ठान करते हैं। हे तपोधन! इस तीर्थके दक्षिण सर्व्वपापनाशक अति पवित्र गङ्गाकेशव तीर्थ है; वहां गङ्गाकेशवके नामसे मेरी एक मूर्त्ति अधिष्ठित है। जो मनुष्य श्रद्धाके साथ उस मूर्त्तिकी अर्च्चना करते हैं, उनका मेरे लोकमें वास होता है। उक्त तीर्थमें शक्तिके अनुसार दान और पितृगणके उद्देशसे पिण्डनिर्व्वापण करनेसे उन्हें शतवर्षव्यापी सन्तोष मिलता है। मैंने तुमसे यह मणिकर्णिकाका वृहत् परिमाण वर्णन किया। सर्व्वविघ्नहर सीमाविनायकके दक्षिण और वैरोचनेश्वरके पूर्व्व वैकुण्ठमाधव नामसे मैं विराज रहा हूं। यहां मेरी अर्च्चना करनेसे, वैकुण्ठधामकी अर्च्चनासे जो फल मिलता है, मनुष्य वैसा ही फलभागी होता है। मुनिवर! विश्वेश्वरके पूर्व्व मैं वीरमाधव नामसे अवस्थान करता हूं; जो व्यक्ति संयत हो, यहां मेरी पूजा करते हैं, वह फिर कालकी कठोर यन्त्रणा उपभोग नहीं करते। मैं कालमाधव नामसे कालभैरवके पास विराजमान हूं; जो मनुष्य भक्तिपूर्णहृदयसे वहां मेरी अर्च्चना करते हैं, उनपर काल या कलि कोई आक्रमण करनेमें सक्षम नहीं होते। अग्रहायणमासीय शुक्लपक्षकी एकादशीको जो व्यक्ति वहां उपवासी रह जाग्रतभावसे रजनी व्यतीत करते हैं, उन्हें फिर कृतान्तका मुंह

दिखना नहीं पड़ता। मैं निर्व्वाणनरसिंह नामसे पुलस्त्येश्वर नामक महेश्वरके दक्षिण अवस्थान करता हूं; जो भक्त मेरी उस मूर्त्तिको प्रणाम मात्र करते हैं, वह निर्व्वाणमुक्ति पाते हैं। हे तपोधन! मैं ओङ्कारेश्वर महादेवके पूर्व्व महाबल नृसिंह नामसे विराजमान हूं। वहां मेरी अर्च्चना करनेसे मनुष्य, कभी भीमपराक्रान्त यमकिङ्करोंको नहीं देखते। मैं चण्डभैरवके पूर्व्व प्रचण्डनरसिंह नामसे अधिष्ठित हूं; घोर पातकी मनुष्य भी यदि वहां मेरी अर्च्चना करें, तो उनका भी सब पाप विलय पाता है। मैं देहलीविनायकके पूर्व्व भक्तोंके पापनाशन गिरिनृसिंह नामसे अवस्थित हूं और पितामहेश्वरके पृष्ठभागमें महाभयहर नृसिंह नामसे अधिष्ठित रह भक्तवृन्दका भयभञ्जन करता हूं। हे मुनिवर! मैं कलसेश्वर नामक महेश्वरके पश्चिम अत्युग्रनृसिंह नामसे विराजमान हूं; जो व्यक्ति श्रद्धाके साथ वहां मेरी अर्च्चना करते हैं, उनका भीषण पापपुञ्ज भी विलीन होता है। मैं ज्वालामुखीके पास ज्वालामाली नरसिंह नामसे अधिष्ठित हूं; वहां जो मेरी अर्च्चना करते हैं, उनके कलुषरूप तृणपुञ्जको मैं भस्मीभूत करता हूं। जहां कङ्कालभैरव सतर्कताके साथ अवस्थित रह काशीधामकी रक्षा करते हैं, वहीं कोलाहलनृसिंह नामसे मैं विराजमान हूं। मेरे नाम सङ्कीर्त्तन मात्रसे सब पातक कोलाहल करते हैं, इसलिये यहां मेरी ऐसी संज्ञा हुई। जो व्यक्ति भक्तिके साथ वहां मेरी अर्च्चना करते हैं, उन्हें कभी किसी तरहका उपसर्ग नहीं होता। मैं नीलकण्ठेश्वरके पीछे विटङ्कनरसिंह नामसे अवस्थित हूं; जो मनुष्य, श्रद्धापूर्व्वक यहां मेरी अर्च्चना करते हैं, वह भयशून्य होते हैं। मैं अनन्तवामन नाम ग्रहणकर अनन्तेश्वर नामक महेश्वरके पास वास करता हूं; वहां भक्तिपूर्व्वक मेरी अर्च्चना करनेसे, अर्च्चनाकारीका पापपुञ्ज अनन्त होनेपर भी मैं विदूरित करता हूं। मैं वामन नामसे अवस्थित रह भक्तवृन्दको दधिभक्त प्रदान करता हूं; मेरे इस नामके स्मरण करनेसे भी मनुष्य कभी दारिद्र्‌यन्त्रणा नहीं भोगते। मैं त्रिविक्रम नाम धारणकर त्रिलोचनके उत्तर अवस्थित हूं; जो व्यक्ति भक्तिभावसे मेरे इस रूपकी पूजा करते हैं, मैं उन्हें प्रभूत वित्त प्रदान और उनका सब पाप हरण करता हूं। मैं बलिवासन नामसे बलिभद्रेश्वरके पूर्व्व अधिष्ठान करता हूं; पहले बलि द्वारा मैं पूजित हुआ था। यह सब भक्त वहां मेरी अर्च्चना करनेसे, बलशाली होते हैं। मैं ताम्रद्वीपसे आकर काशीधाममें भवतीर्थके दक्षिण ताम्रवराह नामसे अधिष्ठित रह भक्तकी मनोभीष्टसिद्धि करता हूं। हे तपोनिधे! मैं धरणिवराह नाम ग्रहणकर

प्रयागीश्वरके पास अवस्थित हूं ; जो व्यक्ति वहांके वराहतीर्थमें स्नानकर वराहरूपधारी मेरा दर्शनकर, नानाप्रकारसे मेरी अर्चना करते हैं, उन्हें फिर नानायोनिमें भ्रमण करना नहीं पड़ता और यहां जो मनुष्य, सामान्य अन्न भी दान करते हैं, वह समस्त धरणीदानके फलभागी होते हैं। जो व्यक्ति मेरा भक्तिरूप भेला लाभ कर सके ; भयङ्कर पापरूप पारावारमें पतित होनेपर भी प्रलयकालमें उन्हें निमग्न होना नहीं पड़ता। मैं कोकावराह नामसे वराहेश्वरके पास अवस्थित हूं ; यहां जो व्यक्ति मेरी पूजा करते हैं, उन्हें अभीष्ट फल मिलता है। पञ्चशत संख्यक मेरी नारायणमूर्त्ति है और जलशरीरमूर्त्ति सौ हैं, कमठमूर्त्ति तीन सौ, मत्स्यमूर्त्ति विंशति गोपालमूर्त्ति अष्टोत्तरशत, बुद्धमूर्त्ति सहस्र परशुराममूर्त्ति त्रिंशत् और एक शत राममूर्त्ति अवस्थित हैं। मुक्तिमण्डपके भीतर मेरा विष्णुरूपसे अधिष्ठान है ; हे मुने! स्वयं विश्वेश्वरने सन्तुष्ट हो यहां मेरी रक्षा की थी और मेरे षष्टिलक्ष अनुचरगण विष्णुरूपमें गदा और चक्र धारणकर इस क्षेत्रको चारो ओर रह रक्षामें नियुक्त हैं। यह सब विवरण सुनकर अग्निविन्दु अतिशय प्रफुल्ल हुए और उन्होंने फिर विष्णुसे पूछा, प्रभो। अपने भक्तवृन्दके हितार्थ और मेरे भी संशयच्छेदनार्थ प्रकाश कीजिये, कि आपकी कितने प्रकारकी मूर्त्ति हैं और किसतरहसे उन सबसे विदित हुआ जा सकता है? भगवान् नारायणने, तपोधन अग्निविन्दुकी ऐसी बात सुनकर अनुक्रमसे अपनी केशवादि मूर्त्तिका विषय वर्णन करना आरम्भ किया। कहा, कि हे प्रशाशालिन् अग्निविन्दो! यथाक्रमसे प्रथम दक्षिण जानना ; जो मनुष्य उन मूर्त्तिकी पूजा करते हैं, वह वाञ्छित अर्थ पाते हैं। जो मूर्त्ति प्रथम दक्षिणबाहुसे क्रमसे शङ्ख, पद्म, गदा और चक्र विमण्डित है, वह मधुसूदनमूर्त्ति है ; यह मूर्त्ति अर्चित होनेपर मनुष्योंके शत्रुका निपात करती है। जो मूर्त्ति अनुक्रमसे आदि दक्षिणबाहुमें शङ्ख, पद्म, चक्र और गदा विभूषित हो, वह सङ्कर्षण मूर्त्ति है, जो मनुष्य इस मूर्त्तिकी पूजा करते हैं, वह फिर कभी जन्म नहीं लेते। आदि दक्षिणबाहुमें क्रमसे जो मूर्त्ति शङ्ख, गदा, चक्र और पद्मसे सुशोभित है, उसी मूर्त्तिका नाम दामोदरमूर्त्ति है ; जो मनुष्य, उसकी अर्चना करते हैं, वह प्रभूत धन-धान्य, पुत्र, गो-लाभ करते हैं। जिस मूर्त्तिमें आदि दक्षिण हस्तसे क्रमसे शङ्ख, चक्र, पद्म और गदा विराज रहे हैं ; वह मेरी वामनमूर्त्ति है ; जो व्यक्ति, अपने घरमें ऐसी मूर्त्ति रखते हैं, वह सम्पत्तिशाली होते हैं। मेरी जिस मूर्त्तिमें पाञ्चजन्य शङ्ख, गदा, पद्म और सुन्दर सुदर्शन शोभा पाते हैं,

वह प्रद्युम्नमूर्त्ति है; जो मनुष्य इसकी अर्च्चना करते हैं, वह प्रभूत धनके अधिकारी होते हैं। विष्णु प्रभृति मेरी छः मूर्त्ति हैं, यह छः मूर्त्ति सृष्टि अनुसार जर्द्ध वामबाहुसे शङ्खप्रभृति भूषणभेदमें सुशोभित हैं; जिनका नाममात्र स्मरण करनेसे पापपुञ्ज बगत होता है। विष्णुमूर्त्ति, शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म विराजित है। लक्ष्मीलाभार्थी मनुष्य इसी मूर्त्तिकी अर्च्चना करें। शङ्ख, पद्म, गदा और चक्रधारी माधवमूर्त्ति है; इस मूर्त्तिके अर्चित होनेपर मनुष्य निरतिशय समृद्धिशाली होते हैं। जो शङ्ख, पद्म, चक्र और गदाधारी हो, वह अनिरुद्धमूर्त्ति है; जो सब मनुष्य, सिद्धि पानेकी इच्छा करते हों, वह इस मूर्त्तिकी अर्च्चना करें। जो शङ्ख, गदा, चक्र और पद्मशोभित हो, वह मेरी पुरुषोत्तम मूर्त्ति है। जिस मूर्त्तिमें शङ्ख, चक्र, पद्म और गदा विराजमान है, वह अधोक्षज मूर्त्ति है; जो व्यक्ति इस मूर्त्तिकी अर्च्चना करते हैं, मैं उनकी भवयन्त्रणा दूर करता हूं। मेरी जिस मूर्त्तिमें क्रमसे शङ्ख, गदा पद्म और चक्र विराज रहे हैं, उनका नाम जनार्द्दनमूर्त्ति और अधो वामबाहुसे शङ्खादिभेदमें मेरी गोविन्दादि छः मूर्त्ति विराजमान है। उक्त गोविन्दमूर्त्ति बाहुचतुष्टयमें अनुक्रमसे शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म धारण करती हैं। त्रिविक्रम नामक मूर्त्तिमें यथाक्रमसे शङ्ख, पद्म, गदा और चक्र शोभा पाते हैं, ऐश्वर्य्याभिलाषी मनुष्यगण इस मूर्त्तिकी अर्च्चना करें। जो मूर्त्ति क्रमसे शङ्ख, पद्म, चक्र और गदाधारी हो वह श्रीधरमूर्त्ति है। मेरी हृषीकेशमूर्त्तिमें पूर्व्वानुक्रमसे हाथमें शङ्ख, गदा, चक्र और पद्म सुशोभित हैं। जिन मूर्त्तिका नाम नृसिंह है, उनके बाहुमें क्रमसे शङ्ख, चक्र, गदा है। जिन मूर्त्तियोंका नाम अच्युत है, वह क्रमसे शङ्ख, गदा, पद्म और चक्र धारण किये हैं। क्रमानुरूप अधो दक्षिणबाहुसे शङ्खादि धारण क्रमसे वासुदेवादि छः मूर्त्ति हैं। उनमें जिस मूर्त्तिका नाम वासुदेव है, उसके हाथमें क्रमसे शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म विराजमान है। मनुष्यगण मेरी नारायण-मूर्त्तिको शङ्ख, पद्म, गदा और चक्रधररूपको चिन्ता करें। हे मुने! मेरी पद्मनाभमूर्त्तिको क्रमसे शङ्ख, पद्म, चक्र और गदा धारण किये हुए समझना। मेरी जिस मूर्त्तिका नाम उपेन्द्र है, वह निरन्तर शङ्ख, गदा, चक्र और पद्मधारी हैं। मेरी जो हरिमूर्त्ति है, उसके बाहुमें क्रमसे शङ्ख, चक्र, पद्म और गदा विराज रहा है, जो उनकी अर्च्चना करते हैं, उनके सब पाप ध्वंस होते हैं। जिनका नाम कृष्णमूर्त्ति है, उसके बाहु चतुष्टयमें अनुक्रमसे शङ्ख, गदा, पद्म और चक्र अवस्थित है। हे मुनिवर! अपनी सब मूर्त्तियोंकी

विभिन्नता कही। इसको जानकर मनुष्य निःसन्देह भक्ति और मुक्ति पानेमें सक्षम होते हैं। कार्त्तिकेयने कहा, भगवान् विष्णु मुनिवर अग्निविन्दुसे यह कह रहे थे, कि इसी समय, जिनके पक्षद्वयके परिचालनसे ही विपक्षकुल दूर विक्षिप्त होते हैं, उन खराज वैनतेयने वहां आ भगवान्को प्रणामकर महोल्लाससे महेश्वरके शीघ्र आनेका समाचार निवेदन किया। यह सुनकर भगवान् नारायणने उल्लासित हो कहा, "महेश्वर कहां हैं?" सुनकर गरुड़ने कहा, देखिये, वह महावृषध्वज आ रहे हैं, समुदय गगनमण्डल उनके ध्वजस्थित रत्नराजिकी किरणमालासे उद्भासित हो रहा है। इसके उपरान्त कमलाक्ष केशवने, भगवान् शङ्करके वृषध्वज-समन्वित स्यन्दनका दर्शन पाया, जिसके दर्शनसे जीवगणको नयनलाभका साफल्य ज्ञान होता है। कोटिसूर्य्य समप्रभ उस रथकी किरणमालासे दिङ्मण्डल उद्भासित होता है और उसकी चारोंओर देवगणका विमान परिवेष्टित रहनेसे उससे गगनमण्डल परिव्याप्त हुआ है। उस रथसे महावाद्य-ध्वनि निकलकर सब गिरिगुहाओंको प्रति-ध्वनित कर रही है। विद्याधरीगणके बारबार असंख्य पुष्पाञ्जलि वर्षण करनेसे इस रथके सौगन्ध्यसे चारोदिक् आमोदित हो रहा है। तब शङ्खचक्रगदाधारी भगवान् नारायणने दूरसे प्रणतिके साथ हर्षोत्फुल्ल हो उठनेकी वासनाकर अग्नि-विन्दुसे कहा, तुम दक्षिण हाथ द्वारा इस सुदर्शनको स्पर्श करो। यह सुनकर अग्नि-विन्दुने सुदर्शनं स्पर्श किया और तत्क्षणात् गोविन्दके कृपाबलसे दिव्यज्ञान पाया। फिर कार्त्तिकेयने कहा, हे कुम्भयोने! फिर वह मुनिवर अग्निविन्दु, विन्दुमाधवकी सेवाके लिये तेजोमय कलेवर धारण करते हुए कौस्तुभशोभित ज्योतिर्मय शरीरमें मिश्रित हुए। हे कलसयोने! जिनका चित्त विन्दुमाधवके पादपङ्कजके मधुकरकी वृत्ति अवलम्बन करते, वही उनका सारूप्य पानेमें समर्थ होते हैं। जो व्यक्ति काशी-धाममें वास, सदा विन्दुमाधवका दर्शन और यह उपाख्यान सुनते, वह निःसन्देह संसार जय करते हैं। पञ्चनदका उद्भव और विन्दुमाधवका विवरण अति विशुद्ध है; सुतरां यह सब और पुण्यक्षेत्र काशीधाममें अवस्थान सुकृतिमान मनुष्यको ही मिलता है। जो मनुष्य, विन्दुमाधवके सामने अग्नि-विन्दुविरचित यह स्तुति पढ़ते हैं, वह ऐहिक समुदय ऐश्वर्य्य भोग करते हुए परिणाममें मोक्षपद पाते हैं। श्राद्धकालमें ब्राह्मणोंके भोजनके समय उनके सन्तोषार्थ यह विशुद्ध उपाख्यान पढ़ना विधेय है। पर्व्वके दिन पवित्र पञ्चनदतीर्थमें अति यत्नके साथ यह उपाख्यान पढ़नेसे पुण्यश्रीपरि-वर्द्धित होती है! जो मनुष्य, विन्दुमाध-वका उत्पत्तिविवरण यत्नके साथ पढ़ते

और निरतिशय भक्तिके साथ सुनते हैं, वह निश्चय भक्ति और मुक्ति पाते और एकादशी तिथिकी रजनी जागरणपूर्व्वक जो व्यक्ति, यह निर्म्मल उपाख्यान सुनते, वह वैकुण्ठधाममें वास करते हैं।

एकषष्टितम अध्याय समाप्त ॥ ६१ ॥

द्विषष्टितम अध्याय।

शिवका काशीप्रवेश और कापिलतीर्थ विवरण।

अगस्त्यने कहा, हे स्कन्द! आपका कहा विन्दुमाधवोपाख्यान अतीव मनोहर है। आपकी वदननिर्गत बचनावली सुनकर मेरी तृप्तिकी सीमा नहीं है; जितना ही सुनता हूं, उतनी ही श्रवणपिपासा क्रमशः बढ़ती जाती है। सम्प्रति मैं आपके मुखसे भगवान शङ्करके काशीधामकी समागमविषयिणी बात सुननेके लिये उत्सुक हूं; हे षड़ानन! खगराजके पास दिवोदासका वह व्यवहार और भगवान् विष्णुका मायाजाल सुनकर भगवानने हर्षी केशसे क्या कहा? कौन कौन व्यक्ति महेश्वरके साथ मन्दराद्रिसे बाराणसीमें उपस्थित हुए थे? भगवान् प्रजापतिने ऐसे लज्जित रहकर किस तरह शङ्करसे पहले साक्षात् की? भगवान् शङ्करने उस समय प्रजापतिसे क्या कहा था? भगवान् भास्करने कैसे वाक्योंसे शङ्करसे अपने अपराधके लिये क्षमा पार्थना की? योगिनियोंने क्या कहा था और ग्रीवावनत प्रमथगणने ही क्या कहा? हे कार्त्तिकेय! यह सब विवरण मुझसे कहिये। शङ्करात्मज भगवान्, षड़ानन, कुम्भयोनि अगस्त्यकी बात सुनकर भक्तिके साथ भक्ताभीष्टप्रद भव और भवानीको प्रणतिपूर्व्वक कहने लगे, हे मुने! जो सब पापोंको और विघ्नराशिको विनाश करती है, मैं वह सर्व्वकल्याणसम्पादिनी कथा कहता हूं, स्थिरचित्त हो सुनो। इसके उपरान्त दानवारि भगवान् मधुसूदनने शङ्करके समागम समाचारसे विदित हो सानन्दहृदयसे शिवागमनवार्त्तावह खगपति गरुड़को यथोचित पुरस्कार दिया और प्रजापतिको अग्रसरकर काशीधामके प्रान्तसे भगवान् शङ्करको उठाया। फिर भगवान् नारायणने, योगिनीगण द्वारा गम्यमान और आदित्यदेव, गणपति, गणगणके साथ मिलकर, वहां कुछ काल अपेक्षा करते हुए दूर हीसे देवाधिदेव शङ्करको निरीक्षणकर शीघ्र गरुड़वाहनपर आरूढ़ हो प्रणिपात किया और वृद्ध प्रजापतिको अपने अंसदेशमें अवनत करते हुए प्रणिपात प्रवृत्त देख स्वयं शङ्करने नम्रताके साथ विनीतवचनसे निषेध किया। फिर प्रजापतिने दोनो हाथ उठाकर स्वस्तिवाचनके साथ सलिलसिक्त अक्षत द्वारा रुद्रसूक्त पढ़ते हुए आमन्त्रण किया। गजाननने विनयके साथ शीघ्र मस्तक विलुण्ठित करते हुए शङ्करके

चरणयुगलमें प्रणिपात किया। फिर देवाधिदेव शङ्करने सानन्दहृदयसे गणपतिको उठाकर उनका मस्तक चुम्बन और आलिङ्गन करते हुए अपने आसनपर बिठाया। इसके उपरान्त नन्दी प्रभृति प्रमथगणने भी भक्तिके साथ उन्हें प्रणिपात करना आरम्भ किया। योगिनीगण, नमस्कारके साथ, परम विशुद्ध स्वरसे मङ्गल गीतमें प्रवृत्त हुई और भगवान् आदित्यदेवने भी निरतिशय भक्तिभावसे प्रणिपात किया। फिर भगवान् चन्द्रशेखरने अति समादरसे नारायणको अपने सिंहासनके पास बांई ओर बैठाया। फिर अपने दक्षिणभाग आसन संस्थापनकर प्रजापतिको बिठाकर प्रसन्नभावसे दृष्टिपात करते हुए प्रमथगणका सन्तोष साधन किया और मस्तकसञ्चालन करते हुए समीपस्थ योगिनियोंको सम्यक् सम्मानितकर भुजभङ्गि द्वारा आदित्यदेवको बैठनेका आदेश दे परम परितृप्त किया। फिर भगवान् ब्रह्माने हाथ जोड़कर प्रफुल्लास्य चन्द्रशेखरसे सविनय सम्बोधनकर कहा, हे भगवन् गिरिजापते! देवदेवेश! मैं जो काशीधाममें आकर आपके पास उपस्थित नहीं हुआ था, मेरा वह गुरुतर अपराध मार्ज्जना करिये। हे चन्द्रभूषण! जराग्रस्त कोई व्यक्ति किसी तरहके काममें सक्षम होकर भी प्रसङ्गाधीन काशीधाममें आकर फिर काशी परित्यागकर जा सकता है? और एक बात है, मैं प्रकृतरूपसे ब्राह्मणत्व हेतु किसी तरहका अनिष्ट करनेमें सक्षम नहीं हुआ, या अनिष्ट सम्पादनमें सक्षम होनेपर भी सहसा कैसे परम सुकृतमान् भूतपतिके अनिष्टसाधनमें क्या पारग होता? यद्यपि समस्त विषयमें मेरा प्रभुत्व है सही, किन्तु मेरा सबके प्रति ऐसा आदेश है, कि निरपराध धर्मपरायण व्यक्तिपर किसी तरहका अत्याचार करना कर्त्तव्य नहीं! इस विश्वसंसारमें ऐसा कौन है, जो निरालस्यभावसे धर्म्मानुष्ठाता काशीपाल दिवोदासपर अणुमात्र भी अहितबुद्धि करनेमें समर्थ हो? परम ज्ञानी पञ्चाननने ब्रह्माकी ऐसी बात सुनकर "हे ब्रह्मन्! मैं सब जानता हूं" कहकर सहास्यवदनसे फिर कहा, ब्रह्मन्! पहले हीसे तुम्हारा कोई दोष नहीं है, फिर तुमने इस काशीधाममें दश बार अश्वमेध याग सम्पन्न किया था। हे प्रजापति! और भी परम हितकर मेरा लिङ्ग प्रतिष्ठित किया था। इसलिये विचारकर देखो, किस कारण ऐसा वेधकार्य्यकलाप करके भी तुम्हारे अन्तःकरणमें ऐसा आत्मापराध सम्भावित होता है? तब क्या यह यथार्थ है, कि सब प्रकारके अपराधका आश्रय होकर भी जो व्यक्ति चाहे किसी स्थलमें मात्र एक भी शिवलिङ्ग प्रतिष्ठा करे, तो उसका सब पाप सम्पूर्णभावसे दूरीभूत होता है। जो व्यक्ति सहस्र प्रकारसे दोषी होकर भी ब्राह्मणको दोषी समझते

हैं, अल्पदिनमें ही उनकी समस्त सम्पत्ति विनष्ट होती है। भगवान् शङ्करका ऐसा चित्तरञ्जन प्रत्युत्तर सुनकर चारोओर योगिनीगण और प्रमथगण परम आनन्दके साथ आपसमें एक दूसरेका मुंह देखने लगे। तब सर्व्वज्ञ आदित्यदेवने भी अवसर पा, उन प्रफुल्लास्य गिरिजानाथसे कहा, हे प्रभो! मैं मन्दराद्रिसे आकर साध्यानुरूपसे बहुविध छद्मवेश अवलम्बन करके भी, वैसे धर्म्मपरायण भूपति दिवोदास जिससे राज्यभ्रष्ट होवे, ऐसा कोई काम कर नहीं सका। फिर आप यहां निश्चित आवेंगे विचारकर तबसे यहीं वास करता हूं और हे प्रभो! आपके शुभागमनकी अपेक्षाकर नानामूर्त्ति धारण करते हुए आपकी सेवामें नियुक्त रह समय बिता रहा हूं। हे महेश्वर! इतने दिनोंसे मेरा आगातरु जो आपके प्रति भक्तिरूप सलिलसे सिक्त हुआ था और आपके ध्यानरूप कुसुमसे शोभमान होता था, वह आज आपके श्रीचरण दर्शनसे फलवान् हुआ। आदित्यलोचन भगवान् सोमेश्वरने आदित्यदेवकी ऐसी विनयपूर्व्वक वचनावली सुनकर कहा, हे दिवाकर! तुम भी अपना किसी तरहका दोष न समझना। दिवोदासके जिस राज्यमें अमरगण प्रवेश करनेमें अक्षम थे, तुम जो उसमें अवस्थान कर सके, इससे ही तुम्हारे द्वारा सम्यक्रूपसे मेरा कार्य्य सम्पादित हुआ है। परमकारुणिक महेश्वरने इस तरह आदित्यदेवको आश्वस्तकर लज्जावनत अपने प्रमथगणको आश्वास प्रदानकर वैसे ही व्रीड़ाविनम्रा योगिनीगणको करुणाकटाक्षसे यथोचित सान्त्वना की। इसके उपरान्त भगवान् अपाङ्गेश्वरने, नारायणके प्रति लोचनद्वय पातित किये; किन्तु महात्मा हृषीकेशने भी सर्व्वकृतान्तदर्शी शङ्करसे अपना किसी तरहका मनोभाव व्यक्त नहीं किया। महेश्वर पहले ही खगराजके मुंहसे उनकी ओर गजाननकी कार्य्यदक्षता जानकर उनके प्रति आन्तरिक सुप्रसन्न थे, सम्प्रति उन्होंने किसी तरहके वाक्यसे कोई विषय प्रकट नहीं किया। इसी समय सुनन्दा, सुमना, सुरभि, सुशीला और कपिला नाम्नी पांच धेनु गोलोकधामसे वहां आईं, भगवान्की स्नेहमय दृष्टिसे उनके स्तनभारसे निरन्तर ऐसे स्थूलधारसे दुग्धक्षरण आरम्भ हुआ, कि उससे क्षणमें ही अतिवृहत एक ह्रद समुद्भूत हुआ। तब महेश्वरके अनुचरवर्गने उस विस्तृत ह्रदको द्वितीय दुग्धसागर समझा। फिर वह ह्रद देवाधिदेव महादेवके अधिष्ठान हेतु एक अतिविशुद्ध तीर्थमें गण्य हुआ। फिर भगवान् शङ्कर द्वारा उसका "कापिलतीर्थ" नाम रखा गया, उनके आदेशानुसार सब देवताओंने उसमें स्नान किया। फिर उस कापिलतापके भीतरसे दिव्य पितामहगण

आविर्भूत हुए देख अमरगणने परमानन्दसे उन लोगोंके उद्देश्यसे जलाञ्जलि दान करना आरम्भ किया। इसके उपरान्त अग्निष्वात्ता, सोमप, आज्यप और वर्हिषद् प्रभृति पितृगणने परम परितृप्त हो शङ्करसे कहा, हे भक्ताभयप्रद! हे जगत्पते! हे देवदेव! आपके पास हमलोगोंने इस तीर्थमें चिरस्थायी सन्तोष पाया; इसलिये हे शम्भो! इस समय आप प्रफुल्लचित्तसे हमलोगोंको अभीष्ट वरदान कीजिये। तब भगवान् शङ्करने दिव्य पितृगणकी ऐसी बात सुनकर देवगणके सामने पितृगणसे परम सन्तोषकर बात कही, हे महाबाहो विष्णो! हे ब्रह्मन्! सब लोग सुनो; जो इस कपिलतीर्थमें श्रद्धाके साथ यथाविधि पिण्डदान करेंगे, मेरे आदेशसे उनके पितृगण अक्षयरूपसे परितृप्त होंगे। मैं पितृगणका सन्तोषजनक दूसरा एक विषय उठाता हूं, एकाग्रहृदयसे सुनो। सोमवारयुक्त अमावस्याको इस तीर्थमें श्राद्ध अनुष्ठित होनेसे, अक्षय फल होगा; प्रलयकालमें सागरसलिल भी शुष्क होता है; किन्तु उस दिन इस कापिलतीर्थमें अनुष्ठित श्राद्धफल कभी विनष्ट नहीं होता। यदि सोमवारमिलित अमावस्याको इस तीर्थमें श्राद्धकार्य्य सम्पादित हो, तो पुष्कर या गयाक्षेत्रमें श्राद्धानुष्ठानकी आवश्यकता नहीं। हे गदाधर! हे पितामह! जहां तुम लोगोंका साक्षात् अधिष्ठान है और मैं भी निजमूर्त्तिमें विराज रहा हूं, वहां जो फल्गुनदी आविर्भूता होगी, इसमें सन्देह ही क्या है? अधिक क्या, स्वर्गमें, अन्तरीक्षमें और भूमण्डलमें चारोओर यावत्तीर्थ विराजमान हैं, सोमवार समन्वित अमावस्यातिथिमें इस तीर्थमें वह सब तीर्थ अधिष्ठान करेंगे। सूर्य्यग्रहणके समय गङ्गासागरसङ्गममें, कुरुक्षेत्रमें और नैमिषारण्यमें श्राद्धानुष्ठानके लिये जैसा फल मिलता है, इस तीर्थमें श्राद्ध करनेसे भी वैसा ही फल मिलेगा। हे दिव्य पितामहगण! इन सब तीर्थोंका नाम कहता हूं; उन सब नामोंके कहे जानेपर तुमलोग निरतिशय परितृप्त होगे। मधुस्रवा आदि कर क्रमान्वयसे कृतकृत्या, क्षीरनीरधि, वृषभध्वजतीर्थ, पैतामहतीर्थ, गदाधरतीर्थ, पितृतीर्थ, कापिलधारा, सुधाखनि और शिवगया, इसके यह दशनाम जानना। हे पितामहगण! श्राद्ध या जलदानादि न करनेपर भी यह दश नाम कीर्त्तन करते ही तुम लोग परम परितृप्त होगे। जो व्यक्ति, पितृगणके सन्तोषार्थ अमावस्या तिथिको यहां आकर ब्राह्मणभोजन करावेंगे, उन्हें उस श्राद्धका असीम फल होगा। पितृश्राद्धकार्य्यमें जो यहां कल्याणकारिणी कपिलाधेनु दान करते हैं, उनके पितृगण उस दानबलसे असंख्यकाल क्षीराम्बुधितीर्थमें अवस्थान करनेमें सक्षम होते हैं। जो व्यक्ति, इस तीर्थमें वृषोत्सर्ग

करेंगे, निःसन्देह उनके पितृगण अश्वमेधयज्ञीय हविः द्वारा तर्पित होंगे। हे पितृगण! सोमवार अमावस्याको इस तीर्थमें श्राद्धकार्य्य अनुष्ठित होनेसे, गयाधाममें अनुष्ठित श्राद्धकी अपेक्षा अष्टगुण अतिरिक्त फलजनक होगा। जो सब जीव, गर्भवासकालमें या जो दन्तोद्गमके पहले ही कालग्रासमें पतित होते हैं, इस तीर्थमें श्राद्ध करनेसे वह भी परम परितृप्त होंगे। जिन्होंने उपनयन या परिणयके पहले प्राणत्याग किया है, इस तीर्थमें उनके उद्देशसे श्राद्ध करनेपर उन्हें अक्षयतृप्ति मिलती है। जिनका अनलमें प्राणवियोग हुआ है या जिनकी मृतदेहका अग्निसंस्कार नहीं हुआ है, जो ऊर्द्धदैहिककार्य्य विवर्जित या जिनका षोड़श श्राद्ध नहीं हुआ है; उनके उद्देशसे यहां श्राद्धक्रिया अनुष्ठित होनेपर वह भी चिरस्थायिनी तृप्ति पाते हैं। जिन्होंने पुत्रविहीन हो प्राणत्याग किया है, जिनके कोई जलदान देनेवाले नहीं हैं, या तस्कर, विद्युत् या सलिलादिसे जिनका अपघात मरण हुआ है, जिन सब पापियोंने आत्महत्या की है, इस कापिलतीर्थमें पिण्डदान करनेसे उन्हें भी परम तृप्ति मिलती है। पितृ-मातृवंशमें जिनका नाम परिज्ञात नहीं है, ऐसे जितने पुरुष कालग्रस्त हुए हों, यहां श्राद्ध करनेसे सबकी शाश्वती तृप्ति उत्पन्न होती है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, जिसका नाम लिखकर इस तीर्थमें पिण्डदान किया जाय, वह सभी चिरन्तनी-तृप्ति पानेमें सक्षम होंगे। जो व्यक्ति जीवनके अन्तमें तिर्य्यक्योनि या पिशाचत्वको प्राप्त हुए हैं, यहां श्राद्धकार्य्य अनुष्ठित होनेसे वह लोग भी उत्कृष्ट गति पाते हैं। नरलोकमें जिसके पितृगण मानवदेह धारणकर अपने अपने कार्य्यके अनिर्वार्य्य दुःखभोगसे कालातिपात करते हैं; यहां श्राद्ध करनेसे उन्हें भी दिव्यदेह मिलती है और अपने सुकृति-प्रभावसे जो पितृपुरुष, सुरपुरमें अवस्थित हैं, इस कापिलतीर्थमें श्राद्धके बलसे शीघ्र उन्हें ब्रह्मलोक मिलता है। यह कापिलतीर्थ सत्यादि युग चतुष्टयमें यथाक्रमसे दुग्धमय, मधुमय, घृतमय और सलिलमय होगा। यदिच यह वाराणसीके वहिर्भागस्थित है, किन्तु ऐसा होनेपर भी मेरे समीप्य-निवन्धन वाराणसीकी अपेक्षा उत्कृष्टरूपसे परिगणित होगा। हे पितृगण! काशीवासियोंने, पहले इस स्थलमें ही मेरा ध्वज सन्दर्शन किया है, इसलिये मैं यहां वृषध्वजरूपसे अधिष्ठित हूंगा। हे पितृपुरुषगण! मैं तुम लोगोंके सन्तोषार्थ इस तीर्थमें ब्रह्मा, नारायण, आदित्य और निज पार्षदसमूहके साथ अवस्थित रहूंगा। जब भगवान् पिनाकपाणि पितृपुरुषोंको ऐसा वरदान दे रहे थे, उसी समय नन्दिकेश्वरने समीप आगत हो नमस्कारकर कहा हे प्रभु! आपकी जय

हो, आपका षट्कौशरी, अष्टकरी, अष्टरूप और अष्टतुरङ्गमविराजित स्यन्दन सुसज्जित हुआ है; जिसमें मन तुरङ्गचालिनी रज्जु और गङ्गा, यमुना दण्डद्वय हैं; जिसके अनिलदेव चक्रनिचयके अधिष्ठात्री देवता और चक्रनिचय स्वयं और प्रातर्मय है; जिसका छत्र निर्म्मल आकाशमण्डल है, कीलनिकर नक्षत्रपुञ्ज, उपनायक आदित्य-गण, पथप्रदर्शनी श्रुति, वरूथ स्मृति, स्वयं दक्षिणा सुख, अभिरक्षक यागनिचय, आसन प्रणव, पादपीठ गायत्री, सोपानराजि साङ्ग व्याहृतिनिकर, द्वाररक्षक चन्द्र-सूर्य्य, मकराकृतितुण्ड अनङ्गदेव कौमुदी वरूथभूमि ध्वजदण्ड महामेरु और दिवाकरका प्रभाजाल जिसकी पताकारूपमें विराजमान है; उसपर साक्षात् वाग्देवी चञ्चलचामर-धारिणीरूपमें अवस्थिता हैं। हे देव! ऐसे वर स्यन्दनवर, आपकी विजययात्राकी अपेक्षामें अवस्थान करते हैं। कार्त्तिकेयने कहा, नन्दिकेश्वर द्वारा यों अभिहित हो, देवाधिदेव शङ्करके भगवान् नारायणका हाथ पकड़के उठनेपर, देवमातृगणने मङ्गल आरति करना आरम्भ की। उस समय चारणनिचयकी मङ्गलमय गीतध्वनि और सुरगणके धीर गम्भीर वाद्यध्वनिसे स्वर्गम-र्त्यका मध्यस्थल प्रपूरित हुआ। तब त्रिभुवनवासी व्यक्तिगण, सुरगणके उस दिग्व्यापी वाद्य शब्दसे आहूत हो चारोंओरसे बाराणसीके अभिमुख दौड़े। तब त्रयस्त्रिंशत् कोटिसंख्यक अमरगण, विंशतिसहस्र कोटिसंख्यक गणदेवता, नव-शतलक्ष चामुण्डा, शतलक्ष भैरवी, अष्टकोटि मेरे अनुचरवर्ग, प्रत्येक महाबल पराक्रान्त मयूराधिरूढ़ षड़ास्य कुमारगण, समुज्ज्वल कुठारधारी विघ्नवारण गणेश्वर, भीम-वेगसम्पन्न पिचिण्डिल नामक सप्तशतलक्ष गणनिकर षड़शीतिसहस्र संख्यक ब्रह्मवादी मुनिगण और इतने ही परिमित गार्हस्थ्य-धर्म्मावलम्बी ऋषिसमूह, त्रिकोटिसंख्यक रसातलवासी नागगण, द्विकोटिसंख्यक शमगुणावलम्बी परमशैव दैत्य और ऐसे ही उतने संख्यक दानवगण, अशीति सहस्र गन्धर्व्वनिकर, अष्टकोटि यक्ष, अष्टकोटि राक्षस, दशसहस्राधिक द्विलक्ष विद्याधर, षष्टिसहस्र अप्सरा, अष्टलक्ष गो-मातृगण षष्टिसहस्र वैनतेयवंशोद्भव विहङ्गमगण विविध रत्नोंके साथ सप्तसमुद्र, त्रिपञ्चाशत् सहस्र स्रोतस्वती, अष्टसहस्र संख्यक धरा-धर, त्रिशत संख्यक वनस्पति और दिक्‌रक्षक अष्टमातङ्ग परमानन्दसे वहां आये। भगवान् शङ्कर उन सब प्राणियोंमें परिवृत हो सानन्दहृदयसे स्यन्दनारोहणसे परम सुन्दर बाराणसी धाममें उपस्थित हुए। उक्त काशीपुरीमें जिस समय प्रवेश हुआ, तब परम हृष्टान्तःकरणसे भगवती नगन-न्दिनीके साथ चारो ओर नेत्रपात करते हुए शङ्कर उस त्रिभुवन मोनरम बाराणसीको देखने लगी। कार्त्तिकेयने कहा,

जो मनुष्य उक्त पवित्र पुरावृत्तको पढ़ते या पढ़ाते हैं, उन्हें शिवसायुज्य मिलती है। अधिकन्तु, श्राद्धके समय इसका पाठ करनेसे उस कार्य्यसे पितृगण चिरस्थायी सन्तोष पाते हैं। एक वर्ष प्रतिदिन भक्ति-पूर्व्वक उक्त वृषभध्वजमाहात्म्यका पाठ करनेसे अविलम्ब पुत्रविहीन व्यक्तिको पुत्र होता है। मैंने जो तुमसे भगवान् शङ्करके वाराणसी प्रवेशकी बात कही, इसमें संशय नहीं, कि इससे सब लोग निरतिशय हर्ष-प्राप्त होंगे। यह विशुद्ध उपाख्यान पढ़ते हुए नवग्रहमें प्रवेश करनेसे निःसंशय सर्व्व-विध सौभाग्य मिलता है। जब इसको सुनते ही भगवान् शङ्कर सन्तुष्ट होते हैं, तब इसमें सन्देह नहीं, कि यह त्रिभुवनस्थ सब लोगोंका ही हर्षदायक होगा! भग-वान् महेश्वरका काशीप्रवेश इस उपा-ख्यानमें कीर्त्तित हुआ है, जो लोग दुष्प्राप्य वस्तुका अभिलाष करते हैं, उन्हें सदा इसका अध्ययन करना कर्त्तव्य है।

द्विषष्टितम अध्याय समाप्त ॥ ६२ ॥

त्रिषष्टितम अध्याय।

ज्येष्ठेश्वरका माहात्म्य।

इसके उपरान्त मुनिवर अगस्त्यने कहा, हे तारकनिसूदन! भगवान शङ्करने बहुवासनाधिगत नयनाभिराम वाराणसी देखनेके उपरान्त किस कामका अनुष्ठान किया, सम्प्रति उसे आप प्रकाश कीजिये। तब कार्त्तिकेयने कहा, हे कलसयोनि! भग-वान् सोमशेखरने उक्त वाराणसीका दर्शन-कर जिस जिस विषयका अनुष्ठान किया, वह प्रकाश करता हूं, सुनो। भक्ताधीन सर्व्वतत्त्ववित् भगवान् शङ्करने काशीष मर्में उपस्थित हो पहले गह्वराधिष्ठित जैगीषव्य ऋषिको देखा था। पहले जब महादेवने वृषारूढ़ हो पार्व्वतीके साथ वाराणसी परित्यागकर मन्दराचलमें प्रस्थान किया, तबसे यह ऋषिवर जैगीषव्यने ऐसा सौषण, व्रत अवलम्बन किया, कि मैं फिर जिस दिन शङ्करके चरणकमलका दर्शन पाऊंगा उसी दिन जलविन्दु ग्रहण करूंगा; इसके भीतर उपवासी ही रहूंगा। वह योगिवर किसी वचनातीत कारणवश या भगवान् शङ्करके प्रसादसे पानभोजनवर्ज्जित होकर भी तबसे आजतक जीवित रहे॥ उन ऋषिवरकी यह घटना केवल शङ्कर ही जानते थे, दूसरा कोई नहीं। वह इसी-लिये सबसे पहले उनके पास उपस्थित हुए। भगवान् महेश्वर, सोमवार अनु-राधानक्षत्राश्रित ज्येष्ठमासीय शुक्लचतुर्द्द-शीको मुनिवर जैगीषव्यको गुहाके भीतर प्रविष्ट हुए थे, इसलिये उस दिन सबको वहां जाना चाहिये। वाराणसीमें उसी दिनसे उस स्थानकी सभी सर्व्वापेक्षा ज्येष्ठ कहा करते हैं, उसी समय ही ज्येष्ठेश्वर नामक शिवलिङ्ग वहां स्वयं प्रकाश हुए।

दिवाकरके प्रकाश होनेपर जैसे तिमिरनिकर विलीन होता है, उसी तरह ज्येष्ठेश्वर नामक शिवलिङ्गका दर्शन करते ही मनुष्योंकी शतजन्मसञ्चित कलुषराशि दूरीभूत होती है। जो मनुष्य, ज्येष्ठवापीमें स्नानकर पितृपुरुषोंके उद्देशसे जलाञ्जलि दानकर उक्त शिवलिङ्गका दर्शन करते हैं, उन्हें फिर जननीजठरमें जाना नहीं पड़ता। उक्त ज्येष्ठेश्वर नामक शिवलिङ्गके पास सर्व्व सिद्धिविधायिनी ज्येष्ठागौरी स्वतः प्रकाशमान हुई हैं। ज्येष्ठमासीय शुक्लाष्टमीको उनके पास महोत्सव और रजनीजागरण करनेसे सर्व्व प्रकारका सम्पद् मिलता है। जो रमणी निरतिशय हतभाग्या हैं, वह यदि उक्त ज्येष्ठवापीमें स्नानके उपरान्त परम भक्तिके साथ ज्येष्ठागौरीको प्रणाम करें, तो अचिरमें उनका सौभाग्योदय होता है. सबसे पहले महेश्वरने वहां कुछ कालतक वास किया। इसलिये तबसे वहां निवासेश्वरसंज्ञक विशुद्ध शिवलिङ्ग प्रसिद्ध हैं। उन निवासेश्वरकी कृपासे प्रतिदिन प्रतिक्षण भक्तगणके भवनमें सब तरहका सम्पद् जाज्वल्यमान होता है। जो व्यक्ति ज्येष्ठेश्वरके पास घृत मधु प्रभृति उपकरणसे यथाविधि श्राद्ध करते हैं उनके पितृगण सातिशय सन्तोषलाभ करते हैं। उक्त वाराणसी ज्येष्ठतीर्थमें साध्यानुसार दान करनेसे मनुष्यको उत्तम स्वर्गादिभोगके उपरान्त सुखमय निर्व्वाणपदप्राप्ति होती है। जो अपने मङ्गलकी कामना करते हैं, उन्हें काशीधाममें सबसे पहले ज्येष्ठेश्वरको अर्च्चनाकर ज्येष्ठागौरीकी पूजा करना विधेय है। फिर परम कृपापरायण भगवान् धूर्ज्जटिने नन्दीको बुलाकर सब सुरगणके सामने कहा, हे नन्दिन्! वहां एक मनोहर गुहा है, तुम शीघ्र प्रवेश करो; देखना, इसके भीतर जैगीषव्य-नामक महानियमशाली मेरे भक्त एक तपोधन रहते हैं। मेरे दर्शनाभिलाषसे कठोर व्रतावलम्बी त्वगस्थिस्नायुमात्रावशिष्ट उन मुनिवरको ले आओ। मैं जब काशीसे मन्दरपर्व्वत गया था, तभीसे इन जैगीषव्यने पानभोजन परित्यागरूप महानियम अवलम्बन किया है। इस समय अमृतोपम इस लीलाकमलको लेकर इसके द्वारा उनका सर्व्वाङ्ग स्पर्श करो। फिर नन्दी शङ्करसे वह लीलाकमल लेकर उन्हें प्रणामकर दुर्गम गुहामें प्रविष्ट हुए। फिर तपस्यारूप अनलसे अति शुष्ककलेवर वाह्यज्ञानशून्य उन योगिवरको वहां देखकर उस लीलाकमल द्वारा स्पर्श करते ही, ग्रीष्मावसानसे वृष्टिसंयोगसे भेक जैसे उल्लसित होता है उसी तरह ऋषिने उल्लास पाया। फिर नन्दीने उन्हें ग्रहणकर शीघ्र देवाधिदेवके पादप्रान्तमें प्रणामपूर्व्वक स्थापित किया। फिर वह मुनिवर जैगीषव्य, सामने शङ्करको देखकर ससम्भ्रमसे दण्डवत् प्रणाम और चरणप्रान्तमें मस्तकलुण्ठनपूर्व्वक परम भ-

त्तिके साथ स्तव करने लगी। कहा, जो शान्त, सर्व्वज्ञ सर्व्वगुणमय और जगत्के आनन्दके निदान हैं; जिनका रूप असीम अथच जो अरूप हैं; सदा ब्रह्मा विष्णु जिनका स्तव करते हैं; जो स्थावर और जङ्गमात्मक हैं; मैं उन परमानन्दहेतु विरूपाक्षको बारबार नमस्कार करता हूं। हे प्रभो! आप सर्व्वात्मा हैं, आप परमात्मा हैं, आप शेष और विशेषविहीन हैं, आपके कोपानलसे अनङ्गदेव भस्मराशि हुए थे, आपकी मूर्त्ति त्रिलोकसुन्दर आपके कण्ठमें गरल और हाथमें भुजङ्गवलय परम शोभा पाते हैं, नारायण आपके चरणयुगलकी वन्दना करते हैं, आपकी शक्ति किसीसे भी कुण्ठित नहीं है, शक्तिरूपिणी भगवती आपकी वामाङ्ग हैं, आप देहविहीन अथच सुन्दरदेहधारी हैं, आपको एकबार मात्र प्रणाम करनेसे, देहीको फिर देह धारण करना नहीं पड़ता, आप ही काल और कालके कालस्वरूप हैं, आपने विश्वहितार्थ कालकूट पान किया था, भुजङ्गमगण ही आपके भूषण और यज्ञोपवीत हैं; अतएव हे खण्डपरशो! आपको नमस्कार है। आप जगत्को अशेष दुःखराशि खण्डन करते हैं, आपके मस्तकमें अर्द्धचन्द्र और हस्तद्वय खड्ग और खेटक धारण करते हैं, देवगण सदा आपका गुण गाते हैं, आपके जटाभारमें सुरतरङ्गिणीकी तरङ्गमाला विराज रही है, आप गिरिशायी और गिरिके अधीश्वर हैं, और गौरी आपकी सहधर्म्मिणी हैं, चन्द्रसूर्य्य और अग्नि ही आपके नेत्रत्रय हैं, शिरोभूषण अर्द्धचन्द्र है। हे कृत्तिवासः! आप जगत्के ईश्वर परम पुरातन हैं, दिग्वसन और भक्तके जराजन्महारी हैं; जो व्यक्ति आपकी अर्च्चना करते हैं, आप उनकी समुदय पापराशि विनष्ट करते हैं और आप ही जीवस्वरूप हैं; आपको नमस्कार है। हे गङ्गाधर! आप ही जगत्के नेत्र हैं, आप डमरू, धनुः और त्रिशूल धारण करते हैं; आप देवादिदेव, त्रयीमय, सन्तोषशील भक्तगणके सन्तोषदाता हैं; वेदत्रयमें आपकी ही महिमा वर्णन की गई है, आप देवदेव हैं; अतएव आपको भूयोभूयः प्रणिपात करता हूं। हे दूरदर्शिन्! आप पापपुञ्जको विद्रावित करते हैं; आप सबके दूरवर्त्ती, दुर्लभ और शोभनात्मक हैं, हे इन्दुकलाधर! हे धुस्तरकुसुमप्रिय! आप धूर्ज्जटि, धीर, धर्म्मपाल और धर्म्मस्वरूप हैं; आपको नमस्कार है। हे नीलग्रीव! हे नीललोहित! आपको बारबार प्रणाम करता हूं; आपके नाम स्मरणमात्रसे त्रैलोक्यका ऐश्वर्य्य पाया जाता है; आप प्रमथगणके नाथ, पिनाकपाणि, पशुपाशच्छेदक और पशुपति हैं, आपके नाम उच्चारणमात्रसे आप महापातक हरण करते हैं; आप पर, परात्पर और परापरके भी पर हैं; आ-

पका चरित्र अपार और महिमाकथा अति पवित्र है; आपको नमस्कार है। आप वामदेव, वामार्द्धधारी, वृषगामी, भर्ग, भीम और भीतिनाशक हैं; आपको नमस्कार है। हे महादेव! हे महेश! हे महःपति! आप भव, भववारण और भूतगणके पति हैं; आपको नमस्कार है। आप पार्व्वतीपति, मृत्युञ्जय, दक्ष-यज्ञविनाशक और यज्ञराजप्रिय हैं; आप यज्ञ, यज्ञकर्त्ता और यज्ञके फलदाता हैं; आप रुद्र, रुद्रपति और सम्पत्प्रद हैं; आप शूली, शाश्वतेश और श्मशानवनचारी हैं; आप ही सर्व्व, सर्व्वज्ञ और पार्व्वतीप्रिय हैं; आपको प्रणाम करता हूं। हे चमा-कर आप ही चमारूपी और हर, त्रैवत्र, मृत्युहारी, सर्व्वमङ्गलमय हैं; आपका शरीर चीरवत् गौरवर्ण है; आपको नमस्कार है। हे अन्धकनिसूदन! आप दृढ़ाधार, ऊर्द्धरेता और उमापति हैं; आपका आदि और अन्त कुछ भी नहीं है; इन्द्र और उपेन्द्र आपका स्तव किया करते हैं; आप महत् ऐश्वर्य्यरूपी हैं; जगत्में आपके सिवा और कुछ भी नहीं है; आपके कार्य्य अनन्त हैं; आप अम्बिकाके पति हैं; मैं आपको नमस्कार करता हूं। आप ही प्रणव, आप ही वषट्कार और आप ही भूः, भूवः और स्वः हैं; हे उमा-पते! अधिक और क्या कहूं, इस विश्वम-ण्डलमें जो कुछ दृश्य और अदृश्य वस्तु है, वह कुछ भी आपसे भिन्न नहीं है। हे देव! मुझमें इतना सामर्थ्य नहीं, कि आपकी स्तुति कर सकूं; कारण, आप ही स्तुतिकर्त्ता और आप ही वाच्य, वाचक और वाक्य हैं। अतएव मैं आपको बार-बार प्रणाम करता हूं। हे महादेव! मैं और किसीको नहीं जानता; हे महेश्वर! दूसरेका स्तव भी नहीं करता; हे गौरीश! और किसीको प्रणाम भी नहीं करता और दूसरे किसीका नाम पर्य्यन्त उच्चारण नहीं करता; मैं दूसरेका नाम लेनेमें गूंगा, बात सुननेमें बहरा, पास जानेमें पङ्गु और दूसरेका दर्शन करनेमें अन्धस्वरूप हूं। एक मात्र आप ही मेरे अभीष्ट देवता हैं; आप ही मेरे कर्त्ता और आप ही मेरे पाता और हर्त्ता हैं; मूढ़व्यक्ति ही नाना-रूपकी उपासना करते हैं। अतएव हे महेश्वर! मैं बारबार आपकी शरणापन्न होता हूं, संसारसागरसे मेरा निस्तार करिये। इसतरह महेश्वरका स्तव करके महामुनि जैगीषव्य चुप हुए। फिर सोम-शेखरने,मुनिवर जैगीषव्यका स्तुतिवाद सुन-कर परम सन्तुष्ट हो; उन्हें वर मांगनेको कहा। जैगीषव्यने कहा, हे परमपदप्रद! हे देवेश! यदि मेरे प्रति प्रसन्न हुए हों, तो यह वर दीजिये, कि जिससे मैं आपके पादपद्मसे अलग न हूं और हे नाथ! और भी एक वर देना होगा, मैंने जो आपका लिङ्ग स्थापन किया है, उसमें सदा

आपका अधिष्ठान रहे। तब ईश्वरने कहा हे अनघ! हे महाभाग जैगीषव्य! तुमने जो प्रार्थना की, तुम्हारा वह सब अभीष्ट सिद्ध होगा और मैं दूसरा वर भी प्रदान करता हूं। मैं तुम्हें निर्व्वाणसाधक योगशास्त्र दान करता हूं; तुम सब योगियोंके योगशिक्षा विषयमें आचार्य्य होगे। हे तपोधन! तुम मेरे प्रसादसे योगविद्याविषयक निखिल गूढ़तत्त्वसे परिज्ञात होगे और परिणाममें उससे हो और निर्व्वाणपद पा सकोगे। नन्दी, भृङ्गी सोमनन्दीकी तरह तुम भी जरामरणविवर्ज्जित और परम भक्तरूपमें गण्य होगे। इस जगत्में परममङ्गलजनक और पापनाशक अनेकानेक व्रत, अनेकानेक नियम, अनेकानेक तपस्या और अनेकानेक दान हैं; किन्तु तुमने जो ऐसा नियम किया था, कि बिना मेरे साक्षात्के पान भोजन न करोगे, यह सर्व्वापेक्षा श्रेष्ठतम है। मेरा दर्शन न करके भोजन करनेसे केवलमात्र पापभोजन करना होता है। जो मूढ़ पत्र, पुष्प या फल द्वारा मेरी अर्च्चना न करके भोजन करते हैं, वह एकविंशति जन्म रेतोभोजी होकर रहते हैं। तुमने जो नियम अनुष्ठान किया है, यम और अन्यान्य कोई नियम ही इसके षोड़शांशके योग्य नहीं हैं। इसलिये तुम सदा मेरे चरणके पास अवस्थिति करोगे और निःसन्देह परिणाममें निर्व्वाण पदवी पाओगे। जो व्यक्ति काशीधाममें तीनवर्ष तुम्हारे प्रतिष्ठित जैगीषव्य नामक मेरे लिङ्गकी अर्चना करेंगे, इसमें सन्देह नहीं, कि वह समस्त योग लाभ कर सकेंगे। जो मनुष्य जैगीषव्य गुहामें योगाभ्यास करेंगे, वह मेरी कृपासे छः मासमें समुदाय वाञ्छित और सिद्धि पा सकेंगे। जो सिद्धिकी कामना करते हों, उन सब मेरे भक्तगणको तुम्हारे प्रतिष्ठित इस शिवलिङ्गकी पूजा और रमणीय इस गुहाका दर्शन करना चाहिये। ज्येष्ठेश्वरक्षेत्रस्थित इन शिवलिङ्गका दर्शन, स्पर्शन और अर्च्चना करनेसे सब पाप विनष्ट होते हैं। जो इस ज्येष्ठेश्वर क्षेत्रमें मेरे कई भक्तोंको भोजन करावेंगे, उतने कोई शिवभक्तको भोजन करानेसे जो फल मिलता है, वह फल पा सकेंगे। जैगीषव्य नामक इन लिङ्गको सदा यत्नके साथ छिपाना, विशेषतः कलिकालमें पापमति मनुष्योंके निकट कभी व्यक्त न करना। हे तपोधन! मैं साधकोंको योगसिद्धि-दान करनेके लिये सदा इन लिङ्गमें अधिष्ठित रहूंगा। हे महाभाग जैगीषव्य! अब एक और वर प्रदान करता हूं, सुनो। जो पुरुष तुम्हारे कहे इस स्तोत्रका जप करेंगे, उनको असाध्य कुछ भी न होगा; इससे योगसिद्धि, महाभयकी शान्ति, महाशक्तिवर्द्धन, महत् पुण्यसञ्चय और महापापराशि निवारण होगी। अतएव परम साधकगणको सर्व्वप्रयत्नसे

इसका जप करना विधेय है। कन्दर्प-दर्पहारी शङ्करने मुनिवर जैगीषव्यको ऐसा वर देकर वहां आये क्षेत्रवासी ब्राह्मणोंको देखा। स्कन्दने कहा, परम ज्ञानशाली जो मनुष्य, यत्नातिशयके साथ यह आख्यान सुनेंगे, वह पापशून्य होंगे और किसी प्रकारका उपद्रव उनपर आक्रमण कर नहीं सकेगा।

त्रिषष्टितम अध्याय समाप्त॥ ६३॥

चतुःषष्टितम अध्याय।

शिवका काशीमाहात्म्य-वर्णन।

अगस्त्यने कहा, हे षड़ानन! भगवान् शिवने ब्राह्मणोंको देखकर क्या कहा और वहां कौन लिङ्ग हैं? उस परम पवित्र शिववाञ्छित ज्येष्ठेश्वरस्थानमें कैसी आश्चर्य्य घटना हुई थी, वह सब मुझसे प्रकाश कीजिये। स्कन्दने कहा, हे अगस्त्य! मुझसे जो जो विषय तुमने पूछा, वह बाहता हूं, सुनो। भगवान् शङ्कर जब ब्रह्माके अनुरोधसे मन्दराचल गये, तबसे वह निष्पाप क्षेत्रसन्यासी विप्रगण निराश्रय हो प्रतिग्रह परित्यागकर दण्डाग्र द्वारा भूमि खोदकर कन्दादि भोजनसे जीवनयात्रा निर्व्वाह करने लगे। हे मुने! उन लोगोंने इसतरह दण्डखात नामक एक रमणीय पुष्करिणी निर्म्माणकर उसकी चारो ओर प्रभूत शिवलिङ्ग संस्था-पितकर यत्नके साथ महेश्वरके आराधनासक्त हो तपस्या आरम्भ की। वह लोग प्रतिदिन अङ्गमें भस्मलेपन और रुद्राक्षधारणकर सदा शिवलिङ्गकी अर्च्चना और शतरुद्रिय जप करने लगे। हे मुने! कठोर तपस्यामें निरत तपःकृश पञ्च सहस्र-संख्यक वह द्विजगण देवदेवकी पुनरागमनकी बात सुन आनन्दसे पुलकित हो उनके दर्शनार्थ दण्डखाततीर्थसे आये थे। मन्दाकिनीतीर्थसे एकमात्र शिवाराधननिरत, पशुपतव्रतावलम्बी अयुतसङ्ख्यक, कापालमोचनतीर्थसे सप्तशत, ऋणमोचनतीर्थसे द्विशताधिक सहस्र, वैतरणीतीर्थसे पञ्चसहस्र; पृथु द्वारा खोदे हुए पृथूदककुण्डसे त्रयोदशाधिक शत; मेनकाप्सरकुण्डसे त्रिशत; उर्व्वशीकुण्डसे त्रिशताधिक सहस्र, ऐरावतकुण्डसे त्रिशतः, गन्धर्व्वकुण्डसे सप्तशत, अप्सराकुण्डसे द्विशत, वृषेशतीर्थसे त्रिशत और नवति, यक्षिणीकुण्डसे त्रिदशधिक सहस्र; लक्ष्मीतीर्थसे षोड़शशत; पिशाच-मोचनतीर्थसे सप्त सहस्र, पितृकुण्डसे शत; ध्रुवतीर्थसे छः शत, मानस सरोवरसे त्रिशत और विंशति, वासुकिह्रदसे दश सहस्र; जानकीकुण्डसे अष्टशत; गौतमकुण्डसे नवशत; दुर्गतिसंहर्त्तृकुण्डसे एकादश शत और असिनदीके सङ्गमदेशनसे सङ्गमेश्वर स्थान पर्य्यन्त गङ्गातीरवासी पञ्चशताधिक अष्टादश सहस्र और पञ्चपञ्चाशत संख्यक ब्राह्मणगण हाथमें जलसिक्त

दुर्व्वा अक्षत, उत्कृष्ट पुष्प, फल और सुगन्ध-माल्य धारण करते हुए जयोक्तिके साथ मङ्गलसूक्त द्वारा देवदेव महेश्वरका स्तुतिवादकर बारबार प्रणाम करने लगी। फिर भगवान् शम्भुके हर्षके साथ उनलोगोंको अभयप्रदान करने और कुशलवार्त्ता पूछनेपर उनलोगोंने हाथ जोड़कर कहा, हे नाथ! हमलोग जब आपके क्षेत्रमें वास करते हैं, तो सदा हमलोगोंका कुशल ही है; विशेष श्रुतिनिचय जिनका स्वरूप वर्णन करनेमें अक्षम हैं, हम ऐसे आपको आज साक्षात् देख रहे हैं: जो आपके क्षेत्रसे पराङ्मुख हैं, उनका ही निरन्तर अकुशल होता है और चतुर्द्दश भुवन भी उनके प्रति पराङ्मुख हैं। हे भुजगभूषण! जिनके हृदयमें सदा काशी विराजमान है, उन्हें संसाररूप सर्पविष अविभूत कर नहीं सकता। "काशी" यह द्वचर मन्त्र गर्भरक्षाका मणिस्वरूप है; जिनके कण्ठसे सदा यह मन्त्र उच्चारित होता है, उनका अकुशल कहां? जो मनुष्य "काशी" यह द्वचरमन्त्रस्वरूप अमृत पीते हैं, वह नश्वरदशा अतिक्रम करते हुए अमर होते हैं। जो व्यक्ति "काशी" यह वर्णद्वय सुनते हैं, उन्हें फिर गर्भविषयिणी बात सुनना नहीं पड़ती। हे चन्द्रशेखर! जिनके मस्तकमें एकबार दैवयोगसे वायुचालित काशी धूलि पतित होती है, उनका मस्तक भी चन्द्रकलसे अङ्कित होता है। प्रसङ्गाधीन भी एकबार आनन्दकानन जिनके नेत्रपथमें पतित होता है, उन्हें फिर भूमण्डलमें जन्मग्रहण या श्मशानभूमि देखना नहीं पड़ती। जो व्यक्ति गमनके समय, अवस्थानके समय, निन्द्रावस्थामें, या जाग्रत अवस्थामें "काशी" इस महामन्त्रका जप करते हैं, उन्हे कोई भय नहीं रहता। जो मनुष्य "काशी" यह बीजमन्त्र हृदयमें धारण करते हैं, उनका सब कर्म्मबीज विनष्ट होता है। जो व्यक्ति चाहे किसी स्थानमें अवस्थित रह "काशी, काशी, काशी" मन्त्र जपते हैं, उनके सामने ही मुक्ति प्रकाश होती है। हे भव! यह काशी साक्षात् कल्याणमयी, आप कल्याणमय और भागीरथी साक्षात् कल्याणस्वरूपा हैं; दूसरी कल्याणकर वस्तु और कहीं नहीं है। पार्व्वतीपति भगवान् हरने उन ब्राह्मणोंकी शैवभक्तिसमन्वित बातें सुनकर परम परितुष्ट हो प्रफुल्लान्तःकरणसे कहा, हे द्विजपुङ्गवगण! तुमलोग धन्य हो; कारण अति पवित्र मेरे क्षेत्रमें तुमलोगोंको ऐसी भक्ति उदित हुई है। समझा, इस क्षेत्रमें रहनेके लिये तुमलोग रजः और तमोगुणशून्य हो सत्त्वमय हुए हो; तुमलोग फिर संसारसमुद्रमें पतित नहीं होगे। जो वाराणसीके भक्त हैं, निश्चय वह मेरी ही भक्ति करते हैं और वह जीवन्मुक्त और उनपर ही मोक्षल-

लक्ष्मी कटाक्षपात करती हैं। जो मनुष्य काशीके किसी क्षुद्रप्राणीसे भी विरोध करते हैं, वह समुदय वसुधावासीके साथ और मेरे साथ विरुद्धाचरण करते हैं। जो व्यक्ति, वाराणसीका नाम नित्य सुनकर आनन्दप्रकाश करते हैं, निःसन्देह वह, निखिल ब्रह्माण्डको आनन्दित करते हैं। जो सब मनुष्य, इस आनन्दकाननमें वास करते हैं, वह अपाप होकर मेरे हृदयमें वास करते हैं। जो मेरे क्षेत्रमें वास करते हैं, मेरी भक्ति और मेरा चिह्न धारण करते हैं, उन्हें मैं मोक्षोपदेश दान करता हूं। जिनके हृदयमें निर्वाणमुक्तिदायिनी वाराणसी विराजती हैं, वह मोक्षलक्ष्मी द्वारा आलिङ्गित हो मेरे पास अवस्थान करते हैं। साक्षात् मोक्षलक्ष्मीस्वरूपा इस वाराणसीमें स्वर्गलक्ष्मीप्रार्थी जिन व्यक्तियोंकी अभिरुचि नहीं होती, वह निःसन्देह पतित हैं। हे द्विजगण! काशीप्रार्थी मनुष्योंके पास मेरे अनुग्रहसे चतुर्वर्गफल किङ्करकी तरह रहते हैं। मैं इस आनन्दकानने प्रज्वलित दावानलकी तरह, जीवगणके सब कर्मबीज दग्ध करता हूं, वह फिर अङ्कुरित होने नहीं पाते। इस काशीधाममें सदा वास और यत्नातिशयके साथ मेरी पूजा करना कर्त्तव्य है; ऐसा करनेसे मनुष्य कलि और कालको पराजयकर मुक्तिरूप अङ्गनाके साथ विहार करते हैं। जो मूढ़, काशीमें उपस्थित होकर भी मेरी सेवा नहीं करते, मोक्षलक्ष्मी उनके शरणागत होनेपर भी शीघ्र विलुप्त होती हैं। हे ब्राह्मणगण! तुम जब मेरा भक्तिचिह्न धारण करते हुए काशीधाममें अवस्थान करते हो, तो तुम्हीं लोग धन्य हो, मैं भी वाराणसीमें सदा तुमलोगोंके हृदयस्थित हूं। मैं तुमलोगोंको वरदान दूंगा, तुमलोग पथेच्छ वरकी प्रार्थना करो। इसलिये, कि तुमलोग मेरे अतिप्रिय हो और तुमने काशीक्षेत्रमें संन्यासधर्म्म ग्रहण किया है। तब उन सब द्विजगणने शङ्करका वदनरूप क्षीरसागरसे समुद्भूत वचनसुधा पानकर प्रफुल्लान्तःकरणसे कहा, हे उमापते! हे महेशान! हे सर्व्वज्ञ! हे भवतापहारिन्! काशीधाम आप द्वारा कभी परित्यक्त न हो, कभी काशीधाममें ब्राह्मणवाक्यसे किसीका भी मुक्तिविघ्नकर अभिसम्पात सफल न हो, आपके पादपद्ममें हमारी अचला भक्ति रहे और कलिके अन्ततक हम इस स्थानमें वास कर सकें! हे ईश! दूसरे वरका प्रयोजन नहीं है, यही वर दीजिये। हे अन्धकरिपो! हम और एक वरकी प्रार्थना करते हैं, अवहितचित्तसे सुनिये। हमलोगोंने भक्तिभावसे आपके प्रतिनिधिस्वरूप जो सब लिङ्ग प्रतिष्ठित किये हैं, उनमें आपका सान्निध्य रहे। द्विजगणकी ऐसी बात सुनकर भगवान पिनाकीने, "तथास्तु"

कहकर "तुमलोगोंका ज्ञानोदय होगा" फिर इस तरह वर प्रदानकर कहा, हे द्विजगण! सुनो, मैं तुम लोगोंको हितोपदेश करता हूं; तुम लोग भी निश्चय उसका प्रतिपालन करो। मुक्ति प्रार्थियोंको प्रतिदिन उत्तरवाहिणीकी सेवा, अति यत्नसे लिङ्गपूजा और इन्द्रियसंयम, दानक्रिया और जीवगणके प्रति करुणा प्रकाश करना विधेय है। मैंने काशीवासियोंका कर्त्तव्य यह रहस्यप्रिय प्रकाश किया। फिर सदा परायेका हिताभिलाष करें, किसीके प्रति भी कटुवाक्य व्यवहार न करें और जिस कारण काशीमें अनुष्ठित पाप और पुण्य दोनो अक्षय होते हैं, इसलिये जिगीषाबुद्धिसे मनमें भी कभी पापसञ्चय न करेंगे। दूसरे स्थानके किये हुए पातक काशीमें और काशीकृत पातक अन्तर्गृहमें विनष्ट होता है और अन्तर्गृहमें अनुष्ठित पातक पिशाचनरकभोगका कारण होता है; किन्तु अन्तर्गृहकी बाहर अवस्थित होनेसे इस नरकमें भोग करना नहीं पड़ता। काशीकृत कर्मका फल कोटि कल्पमें भी विनाश नहीं होता। काशीपातकी व्यक्ति, त्रि-अयुत वर्ष रुद्र पिशाचत्व पाकर समय बिताते हैं। जो व्यक्ति, वाराणसीमें वासकर सदा पापकार्य्यमें रत रहते हैं, वह त्रिंशतसहस्र वर्ष पिशाचयोनि भोगते हुए फिर काशीवासी हो अनुत्तम ज्ञानलाभकर, अनुत्तम मुक्तिपद पाते हैं। हे द्विजसत्तमगण! जो इस काशीधाममें प्रभूत दुष्कार्य्यकर काशीके बाहर पञ्चत्वको प्राप्त होते हैं, उनकी जैसी गति होती है, वह कहता हूं, सुनो। मेरे याम नामक विकटाकार क्रूरकर्मा कितने ही गण हैं, वहलोग काशीपातकियोंको पहले अग्निके उत्तापसे मूषा नामक पात्रमें द्रवीभूत करते हैं; फिर वर्षाकालमें दुर्गम जलमय पूर्व्व ओर लेजाकर भीषण जलमें निमग्न करते हैं, वहां दिवानिशि पद्मयुक्त जलौका, जलोद्गत भूजङ्गम और दुर्निवार मशकगण उन्हें काटते हैं। फिर शीतऋतुमें हिमालय पर्व्वतपर ले जाते हैं। वहां वह भोजन और आवरणविहीन हो अहोरात्र असीम क्लेश भोगते हैं। इसके उपरान्त प्रचण्ड ग्रीष्मसमयमें वृक्षविहीन जलशून्य मरुभूमिमें ले जाते हैं। वहां पापिगण, सदाप्यासे रहकर तीव्र दिवाकरसे क्लिष्ट होते हैं। मेरे गणगण, इस तरह अनन्तकालतक अनन्त यन्त्रणा देकर फिर यहां ला महाकालके पास उन लोगोंके पापकार्य्यका परिचय प्रदान करते हैं। तब महाकालके देखते ही उन लोगोंका दुष्कृतकार्य्य मार्ज्जितकर, उन क्षुधातृष्णार्त्त जीर्णशीर्ण कलेवरके वस्त्रविहीन पापियोंको अन्यान्य रुद्रपिशाचोंके साथ मिला देते हैं फिर वह लोग भैरवानुचर रुद्रपिशाच हो सदा क्षुधातृष्णादिजनित निरति-

शय क्लेश भोगते हैं। केवलमात्र कदाचित् रुधिरमिश्रित आहार पा जाते हैं और त्रि-अयुत वर्ष इस तरह अतिदुःखसे श्मशा-नस्तम्भकी चारोओर गलरज्जुसे आबद्ध रह समय बिताते हैं। अति प्यासे होने-पर भी जलविन्दु स्पर्श कर नहीं सकते। इसके उपरान्त कालभैरवके दर्शनसे नि-ष्पाप हो इस काशीधाममें फिर जन्म ग्रहणकर मेरी आज्ञासे विमुक्त होते हैं। अतएव जो महाफलकी इच्छा करें, उन्हें यहां वाक्य और मनके द्वारा भी पापकार्य्य करना उचित नहीं, सदा सन्मार्गपर अव-स्थित रहें। इस वाराणसीक्षेत्रमें घोर पापचारी व्यक्ति भी देहत्याग करनेसे मेरी कृपासे परम गति पाते हैं। यहां जो मेरे भक्त हैं, वह अनशनव्रत करनेपर, शतकोटि कल्पान्तर होनेपर भी उन्हें फिर संसारमें आना नहीं पड़ता। अर्थ, देह और परिच्छदादि सब वस्तुको ही नश्वर समझ भवभयभञ्जन काशीधामकी सेवा करना कर्त्तव्य है। मैं घोरकलियुगमें सर्व्व-पापप्रणाशिनी वाराणसी पुरीके सिवा और प्राणियोंका प्रायश्चित्त नहीं देखता। काशीमें प्रवेशमात्रसे सहस्र जन्मार्जित पापपुञ्ज भी विनष्ट होता है। योगी सहस्र सहस्र जन्म योगाभ्यास कर जैसी मुक्ति पाते हैं, केवल यहां मरनेसे ही मनुष्य वैसा मोक्षपद पा सकते हैं। इस अविमुक्त क्षेत्रमें जितनी तिर्य्यक्‌जाति वास करती हैं, वह भी समयमें निधनप्राप्त हो परमगति पाती हैं। जो मोहान्ध मनुष्य, अविमुक्तक्षेत्रकी सेवा नहीं करते, वह बार-बार विष्ठा, मूत्र और रेतोमें वास करते हैं। जो ज्ञानी व्यक्ति, काशीमें शिवलिङ्ग प्रतिष्ठा करते हैं, शतकोटि वर्षमें भी उनका पतन नहीं होता। समयसे ग्रह और नक्षत्रगणका भी निश्चित पतन है, किन्तु जो यहां प्राणत्याग करते हैं, उनका पतन नहीं है। जो मनुष्य ब्रह्महत्या करके पीछे अनुतप्त हो काशीधाममें प्राणत्याग करते हैं, निःसन्देह वह भी मुक्ति पाते हैं। जो सब रमणी पतिव्रता और मेरे प्रति भक्तिमती हैं, हे विप्रगण! वह यहां मरनेसे परमगति पाती हैं। इस काशी धाममें एक जन्ममें ही मुक्ति मिलती है, अतएव इसे परित्यागकर दूसरे तपोवनमें गमन करना कर्त्तव्य नहीं। हे द्विजगण! मैं यहां जीवगणको मृत्युके समय तारक-ब्रह्म उपदेश देता हूं, तब वह उससे तन्मय होते हैं। जो भक्त सदा मेरा ध्यान करते और समुदय क्रियाफल मुझे अर्पण करते हैं, उन्हें जैसी मुक्ति यहां मिलती है, वैसी कहीं नहीं मिलती। मृत्युको स्थिरतर, संसारगतिको असुख-दायिनी और आगन्तु सब विषयको नश्वर समझ काशीका आश्रय करना विधेय है। जो कायमनोवाक्यसे काशीका आश्रय करते हैं, उन विशुद्धचित्त व्यक्तिगणका निर्व्वाण-

लक्ष्मी स्वयं आश्रय करती हैं। जो व्यक्ति न्यायोपार्ज्जित अर्थद्वारा, काशीवासी एक व्यक्तिका प्रीतिसाधन करेंगे, वह मेरे सहित त्रिभुवनको प्रसन्न करेंगे। हे द्विजगण! जो मनुष्य निर्व्वाणनगरीस्थित चाहे किसी व्यक्तिको सन्तुष्ट करेंगे, उन्हें स्वयं मैं सन्तुष्ट करूंगा। राजर्षि दिवोदासने, धर्म्मानुसार काशीपुरीका पालनकर सशरीर मेरा पद पाया जिससे उन्हें फिर भवयन्त्रणा भोगना न पड़ेगी! यहां एक जन्ममें ही योगसिद्धि, ज्ञान और मोक्षपद मिलता है, अतएव इसे परित्यागकर तपस्यार्थ और जगह जानेका प्रयोजन नहीं। मनुष्य मोक्षको अति दुर्लभ और संसारकी भीषण समझ प्रस्तराघातसे चरणद्वय खञ्ज रखते हुए इस स्थानमें ही समयकी प्रतीक्षा करें। दुर्ब्बुद्धि व्यक्तिगण काशीपरित्यागकर जब और जगह जाते हैं, उसी समय मेरे दूतगण, करतालि देकर उनका उपहास करते हैं। अनुत्तम सिद्धिक्षेत्र पवित्र वाराणसी परित्यागकर स्थानान्तरमें जानेकी इच्छा ही किसे होती है? मनुष्य, अन्यत्र महादानकर जो फल पाते हैं, यहां काकिनीमात्र दान करनेसे वह फल मिलता है। इस स्थानमें कोई यदि शिवलिङ्गकी अर्च्चना करे और कोई किसी तरहका अनुष्ठान करे, तो उन दोनोंमें लिङ्गोपासक व्यक्ति ही श्रेष्ठ गिना जायगा। दूसरी जगह कोटि गोदान और काशीमें एक मात्र अवस्थिति, इन दोनोंमें काशीवास ही उत्कृष्ट है। दूसरी जगह कोटि ब्राह्मण भोजन करानेसे जो फल होता है, यहां एकमात्र भोजित होनेसे ही वह फल मिलता है। सूर्य्यग्रहणके समय कुरुक्षेत्रमें तुलापुरुषदानसे और काशीमें मुष्टिभिक्षादानसे समान फल मिलता है। इस स्थानमें मेरी परमज्योतिर्म्मयी मूर्त्ति अनन्तलिङ्गरूपसे सत्यलोकादि अतिक्रमकर पाताल पर्य्यन्त अवस्थिति करती है। पृथिवीके प्रान्तभागमें अवस्थित रहकर भी जो काशीस्थित शिवलिङ्गका स्मरण करते हैं, वह महत् पापराशिसे निष्कृति पाते हैं। जो व्यक्ति, इस स्थानमें मेरा दर्शन, स्पर्शन और अर्च्चना करते हैं, वह परम ज्ञानलाभकर फिर जन्मग्रहण नहीं करते। जो व्यक्ति, इस काशीधाममें मेरी पूजा करते हुए स्थानान्तरमें भी प्राणत्याग करते हैं, वह जन्मान्तरमें मेरा साक्षात्कार पाकर विमुक्त होते हैं। भगवान् शङ्कर, द्विजगणसे इस तरह क्षेत्रमाहात्म्य कह उन लोगोंके सामने ही अन्तर्द्धान हुए। उन द्विजगणने साक्षात् विरूपाक्षको प्रत्यक्ष देख हृष्टान्तःकरणसे अपने अपने घर प्रस्थान किया। फिर वह लोग कृपानिधि सर्व्वज्ञ शम्भुकी ऐसी बातसे विश्वस्त हो दूसरा काम परित्यागकर शिवलिङ्गकी ही अर्च्चना करने लगे। स्कन्दने कहा, जो व्यक्ति, श्रद्धाके साथ यह उत्कृष्ट उपाख्यान पढ़ते

या पक्षती, वह निष्पाप होकर शिवलोकमें विराजते हैं ।

चतुःषष्टितम अध्याय समाप्त ॥ ६४ ॥

पञ्चषष्टितम अध्याय ।

परापरेश्वरादि लिङ्गोत्पत्ति विवरण ।

स्कन्दने कहा, हे कुम्भयोने ! ज्येष्ठे-श्वरके सामने जो सब शिवलिङ्ग हैं, उनकी संख्या पञ्चसहस्र है ; मुनिगण उनसे परम सिद्धि पाते हैं । ज्येष्ठेश्वरके उत्तर परा-परेश्वर नामक महत् एक शिवलिङ्ग विरा-जमान हैं ; उनके दर्शनमात्रसे निर्मल ज्ञान मिलता है । और वहां ही माण्ड-व्येश्वर नामक दूसरे एक सिद्धिप्रद लिङ्ग हैं; उनका दर्शन करनेसे मनुष्यकी कभी दुर्बुद्धि नहीं होती । वहां सदा शुभप्रद शङ्करेश नामक और एक लिङ्ग भक्तगणके सर्व्वसि-द्धिदायक हुहुनारायण अवस्थित हैं । वहां ही सिद्धिप्रद जाबालीश्वर संज्ञक लिङ्ग हैं ; उनका दर्शन करनेसे प्राणिगण कभी दुर्गति नहीं भोगते । वहां ही सुमन्तुमु-निप्रतिष्ठित उत्तमतम आदित्यमूर्त्ति विरा-जित है ; उसका दर्शन करनेसे कुष्टव्याधि भी प्रशमित होती और वहां भीषण नामक भीषणरूपिणी भैरवी हैं, भक्तिभावसे उनकी पूजा करनेसे क्षेत्रके सब विपद्विद्रु-रित होते हैं । वहां ही उपजन्धनिस्था-पित कर्म्मबन्धविमोचक एक लिङ्ग हैं ; भक्ति-पूर्व्वक उनकी सेवा करनेसे मनुष्य छः महो-नेके भीतर ही सिद्धिलाभ करते और वहीं एक जगह भारद्वाजेश्वर और घण्टीश्वर नामक दो लिङ्ग हैं ; पुण्यात्मा लोगोंका उनका दर्शन करना कर्त्तव्य है । हे कलस-योने ! वहां ही याज्ञवल्क्य द्वारा स्थापित दूसरे एक लिङ्ग हैं ; उनकी सेवा करनेसे सर्व्वस-म्पद् मिलता है और जो वाजसनेयाख्य मनोहर एक और लिङ्ग हैं, उनका दर्शन करनेसे मनुष्यगणको अश्वमेध फल मिलता और वहां ही कठेश्वर, कल्यायनेश्वर, वामदेवेश्वर, मैठेयेश्वर, हारीतेश्वर, गाल-वेश्वर, कुम्भीश्वर, कौथुमेश्वर, अग्निवर्णे-श्वर, नैध्रुवेश्वर, वत्सेश्वर, पर्णादेश्वर, शतप्रस्थेश्वर और कणादेश्वर और कुछ दूरपर महत् माण्डुकेश्वर, वाभ्रवेयेश्वर, शिलवृत्तीश्वर, च्यवनेश्वर, शालेश्वर, कायनेश्वर, कलिङ्गेश्वर, अक्रोधनेश्वर, कपोतवृत्तीश्वर, कङ्केश्वर, कुन्तलेश्व-र, कण्ठेश्वर, तुम्बुरुपूजित कुहोले-श्वर, मतङ्गेश्वर, मरुतेश्वर, मा-गधेयेश्वर, जातूकर्णेश्वर, जाम्बुकेश्वर, जातुधेश्वर, जलेश्वर, जाल्मेश्वर और जालकेश्वर प्रभृति अयुतार्द्ध शिवलिङ्ग विरा-जमान हैं । अति पवित्र ज्येष्ठस्थानमें अवस्थित शुभप्रद इन सब लिङ्गका स्मर-ण, दर्शन, स्पर्शन, पूजन, मनन और स्तुति करनेसे जीवगणको पाप कभी स्पर्श कर नहीं सकता । कार्त्तिकेयने

कहा, हे मुनिवर! एकदिन ज्येष्ठस्थानमें जैसी घटना हुई थीं, वह कहता हूं, सुनो। महेश्वर स्वच्छाक्रमसे विहार करते थे और महेश्वरी कन्दुकक्रीड़ामें तत्परा थीं। उस समय महेश्वरी, अपने अङ्ग परिचालनमें विशेष पटुता प्रकाश कर रही थीं। उनके निश्वाससौरभसे आकुल हो मधुकरगण उनको दृष्टिपर व्याघात कर रहे थे। कैशवन्धनसखलित सुगन्ध माल्यसे वह स्थान आवृत हुआ था। पत्रावली विराजी उनके कपोलदेशसे स्वेदविन्दु निर्गत हो परम सौन्दर्य्य विस्तार कर रहा था। सूक्ष्मांशुकरन्ध्रसे अङ्गप्रभा निर्गत होती थी। कन्दुकसञ्चालनसे उनका करतल आरक्त और कन्दुकानुसरणक्रमसे नेत्रद्वय परिचालित होनेसे भ्रूयुगल नृत्यकारी हुए थे। जगन्माता मृड़ानी इसतरह क्रीड़ा कर रही थीं, इसी समय भुज-बल-गर्व्वित अन्तरीक्षचर विदल और उपल नामक दैत्यद्वय मानो आसन्नमृत्यु द्वारा प्रेरित होकर ही उन्हें देखकर अनङ्गशरसे प्रपीड़ित हुए। वह दोनो त्रिभुवनको तृणकी तरह समझते थे। इसलिये देवीको हरण करनेके अभिप्रायसे शाम्बरी माया अवलम्बनकर पारिषद्मूर्त्ति धारणकर गगनमार्गसे अम्बिकाके पास आने लगी। तब सर्व्वज्ञ शङ्करने उन कामपीड़ित दुर्व्वृत्त असुरगणका नेत्रचाञ्चल्य देखकर अभिप्रायसे विदित हो दुर्गतिनाशिनी दुर्गाके प्रति कटाक्ष किया। फिर महेश्वरकी अर्द्धाङ्गरूपिणी महेश्वरीने उनको नेत्रभङ्गि समझ उस क्रीड़ाकन्दुक द्वारा एक समयमें ही उन दैत्यद्वयको आहत किया। तब वह वृन्तसे वायुचालित परिपक्व तालफलद्वयकी तरह और पर्व्वतसे अशनिताड़ित शृङ्गद्वयकी तरह, घूमते घूमते पतित हुए। फिर उस कन्दुकने अकार्य्योद्यत दैत्यद्वयको निपातितकर ज्येष्ठेश्वरके पास सर्व्वदुःष्टनिवारक ज्येष्ठेश्वर नामक लिङ्ग रूप धारण किया। जो मनुष्य हृष्टान्तःकरणसे उक्त कन्दुकेश्वरकी उत्पत्तिकथा सुनेंगे और उनकी अर्च्चना करेंगे, उन्हें फिर दुःखभय कहां? स्वयं भवनाशिनी भवानीने कन्दुकेश्वरभक्त निष्पाप मनुष्योंका सदा योगक्षेम विधान किया है। इस लिङ्गमें भगवती पार्व्वतीका भक्तसिद्धिप्रद सानिध्य है और वह सदा उनकी अर्च्चना करती हैं। काशीधाममें जो महालिङ्ग कन्दुकेश्वरकी पूजा नहीं करते, शङ्कर और शङ्करी उन लोगोंका मनोरथ पूर्ण नहीं करतीं। सर्व्वोपसर्गनाशक उक्त कन्दुकेश्वरका नाम सुननेसे सूर्य्योदयसे तमोराशिकी तरह सब पाप शीघ्र विलीन होते हैं। स्कन्दने कहा, हे महाभाग! ज्येष्ठेश्वरके पास जो आश्चर्य्य विवरण हुआ था, वह सुनो। पहले देवर्षि और पितृगणके तृप्तिप्रद दाक्षायात

नामक महाशील ब्राह्मणगण निष्काम हो परम तपश्चरण करते थे, इसी समय दुन्दुभिनिह्राद नामक प्रह्लादके मामा दुष्ट एक दैत्यने मन ही मन चिन्ता की, कि किस तरह देवताओंको जय कर सकूं? उनका बल, आधार और आहार ही क्या है? उस दैत्यने कईबार ऐसा विचारकर निर्णय किया, कि ब्राह्मण ही उनके अजेय होनेके कारण हैं! तब वह ब्राह्मणगणका ही विनाश करनेपर उद्यत हुआ। विचार किया, कि जब देवगण यज्ञभोजी हैं, यज्ञ भी वेदविहित और ब्राह्मण ही वेदके आश्रय हैं, तो निश्चय ही द्विजगण सुरगणके भी आश्रय हैं, इस विषयमें अधिक विचार्य्य नहीं है। सब ब्राह्मणोंको यदि विनाश कर सकूं, तो वेद विनष्ट होंगे, वेदके विनष्ट होनेसे यज्ञ लोप होगा, यज्ञ लोप होते ही वह सब निराहारसे दुर्ब्बल होंगे; तब अनायास ही उन्हें जय कर सकूंगा और सुरगणके पराजित होनेपर मैं ही त्रिभुवनका अधीश्वर हो उनका सब अक्षय सम्पद् आहरण करूंगा और निष्कण्टक राज्यसुख भोग सकूंगा। हे मुने! उस दुर्ब्बुद्धि दैत्यने, ऐसा स्थिरकर फिर विचार किया, कि ब्रह्मतेजःसम्पन्न, तपोबल-समन्वित, वेदाध्ययननिरत प्रभृत ब्राह्मण कहां हैं। जान पड़ता है, वाराणसीमें ही ब्राह्मणोंका अधिक वास है; अतएव पहले वाराणसीस्थ द्विजगणका ही संहार कर फिर दूसरे तीर्थमें जाऊंगा। जिस जिस तीर्थमें अथवा जिस जिस आश्रममें ब्राह्मण हैं, मैं उन सबको ही भक्षण करूंगा। मायावी दुष्टमति दुन्दुभिनिह्रादने कुलोचित ऐसी बुद्धिकर काशीधाममें उपस्थित हो द्विजगणका संहार करना आरम्भ किया। द्विजगणके समिध और कुश लेनेके लिये वनमें जानेपर जिसमें कोई विदित न हो, इसतरह भक्षण करता था। उस वनमें व्याघ्रादिमूर्त्ति और जलमें कुम्भीरादिमूर्त्ति परिग्रह करता था। वह मायावी दिनमें मुनिवेश धारण कर देवगणके भी अदृश्य हो मुनिगणके बीच अवस्थान करता हुआ उनकी कुटीका द्वार अनुसन्धानकर रजनीमें व्याघ्ररूपसे निःशब्दसे भक्षण करता था। एक अस्थि भी परित्याग नहीं करता था। इसतरह उस दुष्ट दानव द्वारा अनेकानेक ब्राह्मण निहत हुए। एक दिन शिवरात्रिको एक शिवभक्त, देवदेवकी पूजा समाप्तकर ध्यानमें निमग्न थे, इसी समय बलदर्पित दैत्यवर दुन्दुभिनिह्राद, व्याघ्ररूप धारणकर उनपर आक्रमण करनेको प्रवृत्त हुआ; किन्तु वह ध्याननिष्ठ, शिवसाक्षात्कारमें स्थिरचित्त भक्तके अस्त्रमन्त्रसे परिरक्षित होनेकी वजह आक्रमणमें अपारग हुआ। फिर जगत्के रक्षामणिस्वरूप भक्तरक्षामें दीक्षित त्रिलोचन हर दुर्म्मति दैत्यका अभिप्राय जानकर, वह जैस ही उनके विना-

अर्थ व्याघ्ररूपसे दौड़ा, उसी समय आविर्भूत हुए। तब उन भक्तोंके आराधित लिङ्गसे पञ्चानन रुद्रदेवको आते देख उस दैत्यने व्याघ्ररूपसे पर्व्वतोपम वर्द्धित हो जैसे ही उनकी ओर नेत्रपात किया, वैसे ही सर्व्वेश प्रभुने उस व्याघ्ररूपी दैत्यको कक्षायन्त्रमें निष्पेषणकर उसके मस्तकपर मुष्टाघात किया। तब उस व्याघ्रने मुष्टिप्रहार और कक्षापेषणसे नितान्त व्यथित हो, चीत्कारशब्दसे भूमण्डल और गगनमण्डल प्रपूरित किया। इसके उपरान्त तपोधनगणने उस भीषण शब्दसे कम्पितहृदय हो रात्रिकालमें शब्दानुसार वहां आकर कक्षमें व्याघ्ररूपधारी परमेश्वरको निरीक्षणकर प्रणतभावसे जयजय ध्वनि करते हुए स्तवकर कहा, हे जगन्नाथः! आपने इस दारुणभयसे हमलोगोंकी रक्षा की। हे ईश! हे जगद्गुरो! अति अनुग्रह कर यहां अवस्थानकर "व्याघ्रेश" नाम धारण करते हुए इसी तरह सदा ज्येष्ठस्थान और तीर्थवासी हमलोगोंकी अन्यान्य उपसर्गोंसे रक्षा कीजिये। देव सोमशेखर उन लोगोंकी बात सुनकर "तथास्तु" कह, फिर उन्होंने कहा, हे द्विजपुङ्गवगण! सुनो। जो व्यक्ति श्रद्धाके साथ यहां इस रूपमें मेरा दर्शन करेंगे, निःसन्देह मैं उनका समुदय उपसर्ग दूर करूंगा। जो मनुष्य, इस मूर्त्तिको अर्च्चनाके लिये आवेंगे, राहमें चोर व्याघ्रादिसे उन्हें कोई आशङ्का न रहेगी। मनुष्य, यह मनोहर उपाख्यान सुनकर हृदयमें इस लिङ्गको स्मरणकर यात्रा करनेपर निश्चय जयी होंगे। ऐसी बात कह देवादिदेव शङ्करके उस लिङ्गमें अन्तर्हित होनेपर विप्रगण विस्मयान्वित हो प्रातःकाल अपने अपने स्थानको गये। स्कन्दने कहा, हे कुम्भयोने! उस अवधिसे वह लिङ्ग व्याघ्रेश्वरनामसे प्रसिद्ध हुए, ज्येष्ठेश्वरके उत्तर अवस्थित उनका दर्शन और स्पर्शन करनेसे सब भय दूर होते हैं। जो व्याघ्रेश्वरके भक्त हैं, महाक्रूर शवकिङ्करगण भी उनका भय करते हैं और "जयजीव" कहकर आशीर्व्वाद देते हैं। यहांके परापरेश्वरादि लिङ्गका उत्पत्ति विवरण सुननेसे मनुष्य महापातकरूप कीचड़में लिप्त नहीं होते। जो व्यक्ति, कन्दुकेश्वरकी उत्पत्ति और व्याघ्रेश्वरका आविर्भाव वृत्तान्त सुनते हैं, वह कभी किसी उपसर्गसे आक्रान्त नहीं होते। उल्लिखित व्याघ्रेश्वरके पश्चिम उटजेश्वर नामक लिङ्ग विराजमान हैं; भक्तोंकी रक्षाके लिये समुद्भूत उन लिङ्गकी अर्च्चना करनेसे कोई भय नहीं रहता।

पञ्चषष्टितम अध्याय समाप्त॥ ६५॥

षट्षष्टितम अध्याय।

शैलेश्वर लिङ्गोत्पत्ति।

स्कन्दने कहा, हे वातापिनाशन! ज्येष्ठेश्वरकी चारों ओर जो लिङ्ग हैं, वह

कहता हूं, सुनो। ज्येष्ठेश्वरके दक्षिण अप्सराओंकी एक लिङ्ग हैं, वहां ही उनका सौभाग्योदय नामक एक कूप अवस्थित है! नर हों या नारी, इस कूपमें स्नानके उपरान्त अप्सरेश्वरका दर्शन करनेसे उनका सौभाग्य नहीं घटता। वहीं वापीके पास कुक्कुटेश नामक एक परम लिङ्ग हैं; उनकी पूजा करनेसे मनुष्यका कुटुम्ब बढ़ता है। ज्येष्ठवापीके निकट पितामहेश्वर लिङ्ग हैं; मनुष्य वहां श्राद्धकर पितृगणका तृप्तिसाधन करें। उक्त पितामहेश्वरके नैऋतकोणमें पितृगणके परम तृप्तिप्रद गदाधरेश्वर नामक लिङ्ग हैं; हे मुने! ज्येष्ठेश्वरके नैऋतकोणमें वासुकीश्वर संज्ञक दूसरे एक लिङ्ग अवस्थित हैं; यत्नातिशयके साथ उनकी अर्चना करनेसे और वहांके वासुकी कुण्डमें स्नानादि करनेसे वासुकीश्वरके प्रभावसे सबका सर्व्वभय दूर होता है। जो व्यक्ति नागपञ्चमीको उस वासुकीकुण्डमें स्नान करते हैं, उन्हें फिर सर्पविषसे कोई भय नहीं रहता। जो व्यक्ति वर्षाकालमें नागपञ्चमीको वहांकी यात्रा करते हैं, नागगण उनके वंशके प्रति सदा प्रसन्न रहते हैं। उक्त कुण्डके पश्चिम भक्तगणके सर्व्वसिद्धिप्रद तक्षकेश्वर नामक लिङ्ग हैं; यत्नके साथ उनकी पूजा करना कर्त्तव्य है। हे मुने! उनके उत्तर तक्षक नामक कुण्ड है; इसमें उदककार्य्य करनेसे सर्पभय नहीं रहता। इस तक्षककुण्डके उत्तर भक्तगणके भयहारी शिवशुश्रूषकारी कापाली नामक भैरव हैं; उक्त भैरवका महाक्षेत्र साधकगणको परम सिद्धिप्रद है। वहां साधन करनेसे छः महीनेमें सिद्धि मिलती है। वहां ही भक्तविघ्नविनाशिनी महातुण्डा नामक चण्डी हैं; अपनी अभीष्ट सिद्धिके लिये नानाविध उपचारसे उनकी पूजा करना कर्त्तव्य है। जो ज्ञानी मनुष्य, महाष्टमीको उनका स्तव करते हैं, वह यशस्वी ऐश्वर्य्यशाली और पुत्र पौत्रान्वित होते हैं। महातुण्डाके पश्चिम चतुःसागरवापी है; उसमें स्नान करनेसे सागरचतुष्टयके स्नानका फल मिलता है। वह स्थान चतुःसागर नामसे महाप्रसिद्ध है; वहां सागरचतुष्टय स्थापित चार लिङ्ग हैं। उक्त सागरवापीके चतुर्द्दिकस्थ लिङ्गचतुष्टयकी पूजा करनेसे समुदय पातक विधूत होता है। उसके उत्तर भक्तिके साथ हर वृषभ द्वारा स्थापित वृषभेश्वर नामक महालिङ्ग हैं; उनके दर्शनसे मनुष्यको छः महीनेमें मुक्ति मिलती है। वृषभेश्वरके उत्तर गन्धर्व्वेश्वर नामक शिवलिङ्ग विराजमान हैं और उनके पूर्व्व गन्धर्व्वकुण्ड है। जो मनुष्य, उक्त कुण्डमें स्नानके उपरान्त गन्धर्व्वेश्वरकी अर्च्चना करते और वहां भक्तिपूर्व्वक विविध दान और देवपितृगणका तर्पण करते हैं, वह गन्धर्व्वगणके साथ परम सुखसे समय बिताते हैं। उक्त गन्धर्व्वेश्वरके पूर्व्व कर्कोट नामक नाग, कर्कोट-

वापी और कर्कोटेश्वर नामक लिङ्ग हैं। जो व्यक्ति इस वापीमें स्नानकर कर्कोटेश्वर और कर्कोट नागको अर्चना करते हैं, वह परम सुखसे नागलोकमें वास पाते हैं। जो कर्कोटवापीमें उदकक्रिया सम्पादनकर कर्कोट नागका दर्शन करते हैं, उनके शरीरमें स्थावर या जङ्गम, कोई विषय ही सञ्चारित नहीं होता। कर्कोटेश्वरके पश्चिम धुन्धुमारीश्वर नामक जो लिङ्ग हैं, उनकी अर्चना करनेसे शत्रुभय नहीं रहता। उनके उत्तर पुरुरवेश्वर नामक एक लिङ्ग हैं; यत्नके साथ उनका दर्शन करना कर्त्तव्य है। ऐसा करनेसे चतुर्वर्गफल मिलता है। उनके सामने सुप्रतीक नामक दिग्गज प्रतिष्ठित यशोबल विवर्द्धक दिग्गजेश्वर नामक एक लिङ्ग और उनके सामने सुप्रतीक नामक एक मनोहर सरोवर है। जो व्यक्ति इस सरोवरमें स्नानकर प्रतीकेश्वरका दर्शन करते हैं, उन्हें दिक्पतित्व मिलता है। वहीं उत्तरद्वारकी रक्षाके लिये विजयभैरवी नामक महागौरी अवस्थिता हैं; मनुष्य इष्टसिद्धिके लिये उनकी पूजा करें। वरणानदीके दक्षिण किनारे विघ्नविनाशक कुण्डन मुण्डन नामक दो शिवानुचर अवस्थित रह क्षेत्रका रक्षाविधान करते हैं। क्षेत्रसम्बन्धीय विघ्ननिवारणार्थ उनका दर्शन करना चाहिये और वहां कुण्डनेश्वर मुण्डनेश्वर नामक शिवलिङ्गद्वयका दर्शन करनेसे मनुष्य परम सुखी होते हैं। हे कुम्भलग्नजो ! अगस्त्य ! पहले वरणानदीके किनारे जो एक अद्भुत व्यापार हुआ था, वह अवहितचित्तसे सुनो। एक दिन पतिव्रता मेनकाने अद्रिवर हिमवानको हृष्टचित्त देख बार बार उमाको स्मरणकर कहा, हे गिरिवर! हे आर्य्यपुत्र! मालूम नहीं, कि विवाहके उपरान्तसे पार्व्वती कहां हैं। भस्मोरगविभूषण, महाश्मशानवासी दिग्वासाः वृषवाहन शङ्कर कहां हैं, मैं यह भी नहीं जानती। ब्राह्मी प्रभृति शक्तिस्वरूपा, सर्व्वपूज्या, कल्याणहेतु बालिका जिन अष्टमातृकाको देखा था, वह कहां हैं? अथवा वह शूलपाणि अद्वितीय, उनका द्वितीय कौन है? जो हो, हे विभो! तुम शङ्करीके अनुसन्धानमें प्रवृत्त हो। तब तनया उमाके प्रति परम स्नेहानुरक्त हो गिरिवरने प्रिया मेनकाको बातसे साश्रुलोचन हो कहा, हे मेनके! मैं स्वयं ही उसका अनुसन्धान करूंगा; उमाको न देखनेसे मैं अतिशय कातर हुआ हूं। जिस दिनसे उमा मेरे घरसे चली गई है, मुझे जान पड़ता है, उसी दिनसे कमलाने भी मेरा भवन परित्याग किया है। हे प्रिये! मेरे कर्णयुगल जिस दिनसे उमाके वचनामृतपानसे वञ्चित हुए हैं, हे प्राणेश्वरी! उसी दिनसे यह और कोई शब्द ग्रहण नहीं करते। हाय! मेरी बच्ची जिस दिनसे नयनके अन्तराल

हुई है, उसी दिनसे सुधाकरकी सुधामय ज्योत्स्नाने भी मुझे सन्तप्त करना आरम्भ किया है। शैलाधिपति हिमालयने ऐसा कहकर विविध रत्न और वसन ले शुभलग्नमें शङ्करीके अनुसन्धानमें यात्रा की। अगस्त्यने कहा, हे षडानन! उन्होंने कितने प्रकारके रत्न और वस्त्र लेकर प्रस्थान किया, वह भी प्रकाश कीजिये। कार्त्तिकेयने कहा, हे मुने! दो कोटि तुला परिमाण मुक्ता, अष्ट तुला वाशिनर हीरक, नवलक्षाधिक उत्तम प्रभासम्पन्न सहस्र-विल्व अन्यान्य हीरक। निर्मल ज्योतिर्मय दिलक्ष तुला परिमित विद्रुमरत्न, हे मुने! पञ्चकोटि पद्मराग मणि, लक्षतुला-परिमित पुष्पराग और उतने ही गोमेद-रत्न, अर्द्धकोटि इन्द्रनीलमणि, अयुततुला-परिमित गरुड़ोद्गार रत्न, नौकोटि वृद्धविद्रुम रत्न, असंख्य अष्टाङ्गभरण, संख्यातीत सुकोमल विविध वसन, प्रभूत चामर और गन्धद्रव्य और अगनन दास दासी लेकर गमन करते हुए वाराणसीमें उपस्थित हो दूर हीसे काशीधामको देखा। देखा, उसका भूभाग नानाविध रत्नराजिसे विराजित है, प्रासादमालासे मणिश्रेणिकरकी ज्योति निकलकर दिवाकरकीसी शोभा विस्तार कर रही है। सौधराजिके ऊपरी भागमें शोभमान स्वर्णकलससे चतुर्दिक् उद्भासित होते हैं। चारो ओर वैजयन्तीके विराजमान रहनेसे ऐसा जान पड़ता था, कि मानो अमरावतीको भी जय किया है। अष्टमहासिद्धिकी अद्भुत क्रीड़ाभवनस्वरूप उस काशीधामको सर्व्वविध फल भारावनत वनश्रेणी, कल्पतरुवनका सौन्दर्य्य भी अपहरण करती थी। गिरिवर, काशीकी ऐसी समृद्धि देखते हुए मन ही मन अतिशय लज्जित हो सोचने लगे, कि प्रासाद, प्रतोली, प्राकार, अट्ट, पुरद्वार, विचित्र कपाट और तटभूमिस्थित मणिमाणिक्यरत्नकी समुज्ज्वल प्रभासे काशीपुरीका जैसा सौन्दर्य्य हुआ है, इससे जान पड़ता है, कि भूमण्डल और सुरलोकके भीतर भी कहीं ऐसा स्थान नहीं है,—दूसरी जगहकी बात कैसी। त्रिविवना होती है, कि कुवेरका भवन या वैकुण्ठधाममें भी ऐसी सम्पत्ति नहीं है। गिरिराज मन ही मन ऐसी सम्भावना कर रहे थे, कि इसी समय एक कार्पटिक (भिक्षुक) उनके नेत्रपथमें पतित हुआ। तब हिमवानने उसे सादर बुलाकर कहा, हे कार्पटिकश्रेष्ठ! इस आसनपर बैठो। हे अध्वग! अपने नगरका वृत्तान्त मुझसे वर्णन करो। यहां क्या क्या अद्भुत विषय हैं? सम्प्रति इसके अधिपति कौन हैं? उनका गुणागुण कैसा है? यदि तुम्हें विदित हो, तो वह सब विषय मुझसे कहो। हे मुने! उस कार्पटिकने गिरिराजकी बात सुनकर कहा, हे राजेन्द्र! आपने मुझसे जो विषय पूछे, वह कहता हूं, सुनिये; दिवोदासके स्वर्ग-

गामी होनेपर आज पांच छः दिन हुए, जगन्नाथ पार्व्वतीपति इस पुरीमें अधिष्ठित हुए हैं। जो त्रिजगत्के अधिष्ठाता, सर्व्वग और सर्व्वदर्शी हैं, हे मानद! क्या आप उन्हें नहीं जानते? मैं समझता हूं, आपका हृदय प्रस्तर या प्रस्तरापेक्षा भी अधिक कठिन है; इसीलिये काशीके अधिष्ठाता गिरिजापति विश्वेश्वरसे विदित नहीं। गिरिराज हिमवान् स्वाभाविक कठिनात्मा होनेपर भी आपको अपेक्षा श्रेष्ठ थे; कारण, उन्होंने प्राणाधिक कन्या दानकर विश्वनाथका प्रीतिवर्द्धन किया था। वह सहज कठिन होकर भी कन्यारूप माल्यदा’ से विश्वम्भरकी पूजाकर गुरु हुए थे। वेद्वेद्य उन महेश्वरका काम कोई जान सकता है? तब भी मैं सामान्यतः इतना जानता हूं, कि यह जगत् उनका सृष्ट है। यह मैंने आपसे काशीके अधिपति और उनका जैसा गुण है, कहा; अब आपने जो यहांका अद्भुत विषय पूछा है, वह कहता हूं, सुनिये। सम्प्रति वह पार्व्वतीपति शङ्कर, काशीलाभसे परम आनन्दित हो शुभ ज्येष्ठेश्वर स्थानमें अवस्थित हैं। स्कन्दने कहा, उस पथिकने जब गिरिराज सुधामय नामाक्षर उच्चारण किया, तो गिरिराजको असीम आनन्दलाभ हुआ। जो व्यक्ति भूमण्डलमें उमाका नामामृत पीते हैं, हे कुम्भयोने! उन्हें फिर मातृस्तन्यदुग्ध पीना नहीं पड़ता। हे द्विज! जो मनुष्य “उमा” द्व्यक्षर मन्त्र प्रतिदिन स्मरण करते हैं, पापात्मा होनेपर भी चित्रगुप्त उन्हें स्मरण कर नहीं सकते। हिमवान् आनन्दचित्तसे फिर कार्पटिककी बात सुनने लगे। कार्पटिकने कहा, हे राजन्! निर्व्वाणनिपुण विश्वकर्म्मा, विश्वेश्वरके लिये जन्मनिर्व्वाणदायक जैसा प्रासाद निर्म्माण करते हैं, वैसा मैंने कभी कानसे भी नहीं सुना। उस प्रासादकी सब दीवारें तेजोमय मणिमाणिक्यकी शलाका द्वारा विरचित हैं। उस प्रासादमें, मानो प्रत्येकमें आठ आठकर चतुर्द्दश भुवनकी धारणाके लिये ही परम प्रभासम्पन्न एक सौ बारह स्तम्भ निर्म्मित हुए है। चतुर्द्दश भुवनका जो सौन्दर्य्य है, उस प्रासादमें उसका शत कोटिगुण अधिक है। स्तम्भाधारकी सब शिला प्रभामय चन्द्रकान्तमणिसे विरचित हैं; उनपर पद्मराग और इन्द्रनीलमणिमय पुत्तलिकानिचय, रत्नदीपालोकसे चतुर्द्दिक् उद्भासित कर रही हैं। वहां समुज्ज्वल स्फटिक-निर्म्मित पद्मसे सुशोभित शिलातलमें आरक्त, नील, लोहित, पीत और श्वेतवर्णा नानाविध सब रत्न चित्रपटमें चित्रितकी तरह मनोहर सौन्दर्य्य विस्तार करते हैं। सुचिक्कण माणिक्यरचित स्तम्भनिचय मानो अविमुक्तक्षेत्रकी मोक्षलक्ष्मीको रतह अङ्कुरवत् शोभा धारण किये हैं। वहां शिवानुचरगणने सप्तसागरसे रत्नसमूह लाकर पर्व्वत

शृङ्गसम स्तूपाकार कर रखा है और पातालतलसे नागगणने कोषागारस्थित असंख्य फणामणि लाकर पर्व्वताकार कर रखा है। उस प्रासादमें शिवभक्त दशाननने स्वयं राक्षसगण द्वारा त्रिकूट पर्व्वतसे कोटि कोटि सुवर्ण मंगाकर रखे हैं और द्वीपान्तरस्थित भक्तगणने शङ्करके प्रासादका निर्म्माण होना सुनकर, असंख्य सब माणिक्य आहरण किया है। अधिक क्या, स्वयं भगवान् चिन्तामणिने साहाय्यार्थ, निज चिन्तासमुद्भूत विचित्र रत्नराजि विश्वकर्म्माके हाथमें समर्पण किया हैं। भक्तगण भक्तिके साथ प्रतिनियत कल्पलतासम नाना-वर्णकी पताका वहां संयोजित करते हैं। दही, दुग्ध, इक्षु और घृतसागर प्रतिदिन पञ्चामृतपूर्ण कलससमूह द्वारा और सब कामधेनु, भक्तिपूर्ण हृदयसे स्वयंकृत मधुर दुग्ध द्वारा लिङ्गरूपी महेश्वरको अभिषिक्त करती हैं। स्वयं मलयाचल गन्धसाररससे और कपूररम्भा, कर्पूर द्वारा उनकी सेवा करती हैं। जिस शङ्करालयमें प्रतिदिन ऐसा अपूर्व्व व्यापार संघटित होता है, हे कठिनाश्रय! आप उन उमाकान्तसे परि-ज्ञात नहीं हैं? अद्रिराज, जामाताकी ऐसी समृद्धि सुन नितान्त लज्जित हुए। फिर उस कार्पटिकको पारितोषिक दे विदा कर, विस्मयोत्फुल्ललोचनसे फिर मन ही मन चिन्ता करने लगे। अहो! मैंने जो कार्पटिकके मुंहसे यह सुखकर विषय सुन लिया; यह बहुत ही अच्छा हुआ। त्रिज-गत्पति जामाताके इस स्थानमें ऐसी सम्पत्ति सुनी और देखता हूं, उससे कन्याके लिये जामाताका सन्तोषकर जो सब रत्ननिकर लाया हूं, वह नितान्त ही तुच्छ जान पड़ते हैं। पहले विचार किया था, कि जामाताको पहले जैसा देखा था अब भी वैसा ही होगा; वह सर्व्वकर्म्म पराङ्मुख, वृद्ध वृषभमात्र सम्पत्ति, सबके अपरिचित किस वंशमें उनका जन्म है, यह भी कोई नहीं जानता था। अधिक क्या, उनका क्या नाम है, किस देशमें जन्म है, क्या उपजीविका और कैसे आचार हैं, यहभी कोई नहीं जानता था। केवल नाम-मात्रके ईश्वर थे, किन्तु ऐश्वर्य्यसूचक कोई वस्तु नहीं थी। अब देखता हूं, मेरे वही जामाता, सुमुख, वेदवेद्य और सर्व्वज्ञ हैं, वह दरिद्रोंको निर्व्वाणलक्ष्मी दान करते हैं और सब कर्म्म सफल करते हैं, यह समुदय जगत् उनका सृष्ट है। पहले जिन्हें कोई नहीं जानता था, वह इस समय वेदवेद्य हैं। सदा जो अनभिज्ञ समझे जाते थे, वह सर्व्वज्ञ कहकर परि-ज्ञात होते हैं। पहले जिनका एक नाम भी कोई नहीं जानता था; अब मालूम हुआ, कि समुदय पदार्थोंके जो कुछ नाम हैं, वह सभी नाम उनके हैं। पहले जो देशविदित नहीं थे, और जिनको सर्व्व-वृत्तिपराङ्मुख समझा था; अब देखता

हूं, कि वह सर्व्वदेशीय और सबके सर्व्वत्र-त्तिदाता हैं। समुदय श्रुति और स्मृति भी जिनके निकट आचार परिज्ञात हुई हैं, मैं उन्हींको आचारहीन समझता था। अहो! मेरे वह जामाता, साक्षात् ईश्वर और सर्व्वैश्वर्य्यदाता हैं; वह सर्व्वगुणके आधार होकर भी गुणातीत, परात्पर और अर्व्वाचीन, अथच पराचीन हैं। मैं भूधरोंका अधीश्वर हूं; उमापति निखिल विश्वेश्वर-नाथ हैं। मेरी सम्पत्ति परिमित, किन्तु उनकी सम्पत्ति अपरिमित है; अतएव मेरी लाई हुई यह सब सामग्री उनके निकट तुच्छ हैं। अतएव इस समय उनसे साक्षात् न करके बारान्तरमें फिर आकर किसी समय साक्षात् करूंगा। गिरिराजने मन ही मन ऐसा सिद्धान्त करके सायं-कालको महाबल पराक्रान्त पार्व्वतीय अनु-चरवर्गको बुलाकर कहा, तुम सभी बल-वान् हो, अतएव मेरी एक आज्ञाका प्रति-पालन करो। सूर्य्योदयके भीतर शीघ्र एक शिवालय प्रस्तुत करो, इससे मैं इह-काल और परकालमें कृतार्थ हूंगा। जो व्यक्ति इस काशीधाममें जाकर शिवालय-दान करते हैं, उन्हें त्रिलोकवासियोंको आलय दान करनेका फल होता और वह पर्व्वदिनमें महातीर्थमें श्रद्धाके साथ यथा-विधि सत्पात्रको विविध महादानका फल पाते हैं। जो व्यक्ति वित्तशाठ्य न करके धर्म्मोपार्ज्जित धन द्वारा इस स्थानमें शम्भु का महत् मन्दिर प्रस्तुत कराते है, उन्हें कमला कभी परित्याग नहीं करतीं। जो मनुष्य वाराणसीमें उपस्थित हो शिव लिङ्ग स्थापन करते हैं, वह शीर्णपर्णाशनादि तपोनुष्ठानके फलभागी होते और जो व्यक्ति आनन्दकाननमें देवदेवका मन्दिर निर्म्माण करा देते हैं, उन्हें महासमारोहसे सम्पादित महत् यज्ञनिचयका फल लाभ होता है। गिरिराजकी ऐसी आज्ञा सुनकर उमाके अनुचरगणने यामिनीके भीतर ही एक अपूर्व्व शिवमन्दिर प्रस्तुत किया, शैलेश्वरने शैलेश्वर नामक चन्द्र-कान्त-मणिमय एक शिवलिङ्ग प्रतिष्ठित किया। तब उनकी कान्तिसे वह शिवा-लय उद्भासित होने लगा। फिर उन्होंने उस मन्दिरमें अन्याय भूधरसे स्वीय प्राधा-न्यव्यञ्जक प्रशस्ताक्षरशालिनी एक प्रशस्त-लिपि बद्ध कर दिया। फिर शैलराजने अरुणोदय होनेपर पञ्चनदह्रदमें स्नानकर कालराजको नमस्कार और पर्य्यटनाकर वहांकी रत्नराशि रक्षा करते हुए पार्व्वतीय निज अनुचरगणसे परिवृत हो शीघ्र अपने स्थानको प्रस्थान किया। इसके उपरान्त प्रातःकाल हुण्डन मुण्डन नामक शिवानुचर द्वय शुभ वरणानदीके किनारे अदृष्टपूर्व्व रमणीय वह देवालय देखकर शिवके पास निवेदनार्थ आकर, पार्व्वतीकरधृत दर्पणमें निज मुख दर्शनासक्त महादेवको देखकर भूतलमें दण्डवत प्रणामकर भ्रूभङ्गीसे

चतुष्टा धानेपर हाथ जोड़कर कहने लगी, हे देवदेव! हम नहीं जानती, कि किस परम भक्तिमान्‌ने वरणानदीके किनारे अति मनोहर प्रासाद निर्माण किया है। हे प्रभो! सायंकाल पर्य्यन्त उसका कुछ भी दिखाई न दिया, आज प्रातःकाल ही दिखाई दिया है। तब भगवान् शङ्करने उनकी बात सुनकर पार्व्वतीसे कहा, अयि नगेन्द्रनन्दिनि! मैं यद्यपि सर्व्वज्ञ हूं, समुदय वृत्तान्त जानता हूं; किन्तु तथापि चलो। अनजानकी तरह हम प्रासाद देखने चलें। हे मुने! यह बात कहकर महेश्वर पार्व्वती और अनुचरगणके साथ महत्‌रथमें आरूढ़ हो प्रासाददर्शनके उत्सुक हो स्वभवनसे निकले। फिर शशाङ्क-शेखरने वरणाके किनारे एक रातके भीतर निर्म्मित अतीव रमणीय प्रासाद देखनेपर रथसे उतर उसके भीतर प्रवेश किया। फिर सहसा मोक्षलक्ष्मीका अङ्कुरोपम, नयनानन्दकर, पुनर्ज्जन्मविनाशन, देदीप्यमान चन्द्रकान्तमणिमय महत् शिवलिङ्ग देखकर जैसे ही "यह किसने स्थापन किया" पूछनेकी इच्छा की, उसी समय सामने कर्त्तृ-सूचक प्रशस्ति दिखाई दी। फिर कन्दर्प-दर्पहारी हरने मनहीमन अल्पमात्र विचारकर कहा, देवि! देखती हो? अपने पिताकी कीर्त्ति देखो। तब पार्व्वतीने शङ्करकी बात सुनकर अतिशय आनन्दिता हो आनन्दाङ्कुरलक्ष्मीकी तरह सर्व्वाङ्गमें कदम्बकुसुमका सौन्दर्य्य धारण करती हुई चरणद्वयको प्रणामकर शङ्करसे कहा, हे नाथ! इस परम लिङ्गमें सदा आपको अधिष्ठित रहना होगा और जो इस शैलेश्वर-लिङ्गमें परम भक्तिमान् होंगे उन्हें ऐहिक और पारत्रिक समृद्धि दान करना होगी। फिर भगवान् शङ्कर "ऐसा ही होगा" कह पार्व्वतीसे कहने लगे, जो वरणामें स्नानकर आनन्दके साथ शैलेश्वरकी अर्च्चना, पितृगणकी तर्पण और यथाशक्ति दान देंगे, उन्हें फिर इस संसारमार्गमें विचरण करना न पड़ेगा। हे शुभे! मैं सदा इस शैलेश्वरमें अवस्थान करूंगा और जो व्यक्ति इनकी अर्चना करेंगे, उन्हें परम मुक्तिपद प्रदान करूंगा। जो शैलेश्वरका दर्शन करेंगे, वह काशीधाममें वासकर, किसी प्रकारके दुःखसे पीड़ित न होंगे, हे कलशयोने! फिर भगवती उमाने भी एक वरदान किया, कि जो शैलेश्वरके भक्त होंगे, वह निःसन्देह मेरे पुत्रवत् प्रिय हो सकेंगे। स्कन्दने कहा, हे महामुने! यह मैंने तुमसे शैलेश्वरका विवरण वर्णन किया, अब रत्नेश्वरका उत्पत्ति विषय कीर्त्तन करता हूं। परम श्रद्धाके साथ शैलेश्वरका माहात्म्य सुननेसे मनुष्य, पापरूप कञ्चुक, परित्यागकर शिवलोकमें परम सुखसे वास करता है।

षट्षष्टितम अध्याय समाप्त॥ ६६॥

सप्तषष्टितम अध्याय।

रत्नेश्वर प्रादुर्भाव।

अगस्त्यने कहा, हे षड़ानन! सम्प्रति आप रत्नेश्वरका उत्पत्तिविवरण कीर्त्तन करिये। इस काशीधाममें रत्नभूत महालिङ्ग हैं, उनकी कैसी महिमा और किस व्यक्तिने उनकी प्रतिष्ठा की है? हे गौरी-हृदयनन्दन! आप यह सब विषय सविस्तर वर्णन करिये। स्कन्दने कहा, हे मुने! तुमसे मैं रत्नेश्वरका माहात्म्य और उनका प्रादुर्भाव विषय वर्णन करता हूं; उनका नाममात्र सुननेसे त्रिजन्मार्ज्जित पापराशि भी विनष्ट होती है। शैलराज हिमवान्, काशराजके ऊत्तर जो सब रत्नराशि परित्यागकर चले गये थे, वह सब रत्न ही उन सुकृतिशालीके पुण्यबलसे इन्द्रधनुसमप्रभ सर्व्वरत्नमय एक लिङ्गरूपमें परिणत हुआ। उक्त शैलेश्वर लिङ्गका दर्शन करनेसे ज्ञानरूप रत्न मिलता है। फिर हरपार्व्वतीने शैलेश्वरका दर्शनकर जहां रत्नमय लिङ्ग स्वयं समुद्भूत हुए थे, वहां जाकर देखा, कि उनकी प्रभासे समस्त भवन आलोकित होता है। भवानीने उन सर्व्वरत्नसमुद्भूत अदृष्टपूर्व्व शुभलिङ्गका दर्शनकर शङ्करसे पूछा, हे देवदेव जगन्नाथ! हे सर्व्वभक्ताभयप्रद! सप्तपातालमूलवत् यह लिङ्ग कहांसे उत्पन्न हुए? इनकी प्रभासे समुदय गगन और दिङ्मण्डल उद्दीपित हो रहा है। हे भवान्तक! इनका कैसा रूप है, इनका नाम ही क्या है और किस प्रकारका प्रभाव है? इनको देखकर ही मेरा अन्तःकरण अतिशय उल्लासित और इनमें ही अनुरक्त होता है, हे नाथ! आप इनके प्रभावादिका विषय वर्णन करिये। शङ्करने कहा, हे अपर्णे पार्व्वति! तुमने जो विषय पूछा, मैं वह सर्व्वतेजोनिधि इन लिङ्गका स्वरूप वर्णन करता हूं, सुनो। हे भामिनि! तुम्हारे पिता गिरिराजने निज सुकृतोपार्ज्जित जो सब रत्नराशि तुम्हारे लिये लाकर, इस स्थानमें छोड़कर स्वभवनमें गमन किया था, उस महत् रत्नराशिसे ही, इन रत्नेश्वरका प्रकाश है। हे अनघे! श्रद्धाके साथ तुम्हारे या मेरे लिये इस काशीमें जो कुछ समर्पण किया जाय, उसका ऐसा ही परिणाम है, हे उमे! यह रत्नेश्वर लिङ्ग केवल रत्नस्वरूप हैं; काशीधाममें इनका अनन्त प्रभाव है। काशीस्थित समुदय लिङ्गमें महानिर्व्वाणरूप रत्नप्रद इन लिङ्गके रत्नस्वरूप होनेकी वजह ही इनका नाम रत्नेश्वर है। हे महेश्वरि! सम्प्रति अपने जनकाहृत इस सुवर्णराशि द्वारा इनका प्रासाद प्रस्तुत करो। शिवलिङ्गको प्रासाद दान करनेसे, अनायास ही लिङ्ग-स्थापनका फल मिलता है। हे मुने! भगवती पार्व्वतीने इस तरह अभिहित हो सोमनन्दी प्रभृति अनुचरगणको प्रासादनिर्म्माणार्थ आदेश किया।

उनलोगोंने प्रहरके भीतर ही नाना कौतूहलकर चित्रविशिष्ट मेरुशृङ्गोपम सुवर्णमय एक प्रासाद निर्म्माण किया। यह देखकर देवीने परम आनन्दित हो गणगणको समादरपूर्व्वक प्रभूत पारितोषिक प्रदान किया। हे महामुने! फिर भगवतीके पुनर्व्वार शङ्करको प्रणामकर उक्त लिङ्गकी महिमाका विषय पूछनेपर उन्होंने कहा, हे देवि! शुभप्रद यह लिङ्ग अनादि हैं। केवल तुम्हारे पिताके पुण्यगौरवसे ही इस समय आविर्भूत हुए हैं। इस काशीधामके अभीष्टप्रद यह रत्नेश्वर लिङ्ग समुदय गोप्यवस्तुसे भी गोपनीय हैं; विशेषतः कलिकालमें पापमतिसे यह विषय किसी क्रमसे प्रकाश करना कर्त्तव्य नहीं। जैसे घरके भीतर रत्न, साधारणसे गुप्त रहता है, उसी तरह अविमुक्तक्षेत्रमें भी रत्नभूत यह लिङ्ग सदा गोपनीय हैं। हे पार्व्वति! जो रत्नेश्वरकी अर्च्चना करते हैं, ब्रह्माण्डमें जितने लिङ्ग हैं, वह समुदय लिङ्ग उनके द्वारा अर्च्चित होते हैं। हे गौरि! जो भ्रमक्रमसे भी रत्नेश्वरकी अर्च्चना करते हैं, वह निश्चय ही सप्तद्वीपाधिपति राजा होते हैं। मनुष्य, एकबार रत्नेश्वरकी अर्च्चना करनेसे त्रैलोक्यस्थित समुदय रत्नभूत वस्तुके अधिकारी होते हैं। जो कामना परित्यागकर रत्नेश्वरकी पूजा करेंगे, वह जीवनावशेषमें मेरा सायुज्य लाभ करते हुए सदा इस स्थानमें मेरा दर्शन पावेंगे। हे देवि! कोटि रुद्रमन्त्रजपसे और इन रत्नेश्वरकी पूजासे समान फल मिलता है। अनादिसिद्ध इन लिङ्गघटित जो एक अद्भुत घटना हुई है, मैं तुमसे वह सर्व्वपापनाशन अपूर्व्व इतिहास वर्णन करता हूं। पहले यहां नाट्यविषयमें सुदक्ष कलावती नाम्नी एक नर्त्तकी थी। वह एक दिन फाल्गुनमासमें शिवरात्रिकी जागरणपूर्व्वक सुमधुर नृत्य गीत और स्वयं नानाविध वाद्य आरम्भ करती हुई रत्नेश्वरको प्रसन्नकर अपने स्थानको गई। फिर सुदक्ष नृत्यकारिणी समयमें देह त्यागकर वसुभूति नामक गन्धर्व्वराजकी कन्यारूपमें उत्पन्न हुई। हे कुम्भयोने! शिवरात्रिके दिन जागरणकर उसने रत्नेश्वरके सामने जो नृत्यगीतवाद्य किया था, उसी पुण्यसे वह परम रूपलावण्यवती चतुःषष्टिकलाभिज्ञा और मधुरवादिनी हो रत्नावली नाम ग्रहणकर सदा पिताका आनन्दवर्द्धन करने लगी। हे मुने! गान्धर्व्वविद्यामें नि[illegible]णा और गुणरूप रत्नकी महत् आकारस्वरूपा उस रत्नावलीकी शशिलेखा, अनङ्गलेखा और चित्रलेखा नाम्नी परम चतुर तीन सखी थीं। एक समय रत्नावलीके सखीत्रयके साथ वाग्देवीकी उपासना करनेसे उन्होंने परमप्रीता हो चतुःषष्टिकलाविषयमें अभिज्ञता प्रदान की। हे गौरि! जन्मान्तरीण संस्कारवश उसने रत्नेश्वरके सम्बन्धमें एक नियम किया, कि

नित्य काशीस्थित रत्नभूत रत्नेश्वरका बिना दर्शन किये बात न करूंगी। वह गन्धर्व्व-दुहिता ऐसा नियमकर सखीगणके साथ प्रतिदिन रत्नेश्वरका दर्शन करने लगी। एक दिन मेरे इन लिङ्गकी आराधनाकर मनोहर गीतमालासे मेरे तुष्टिसाधनमें प्रवृत्ता होनेपर उसकी सखीत्रयने उसी समय रत्नेश्वरका प्रदक्षिण करना आरम्भ किया। हे उमे! फिर मैंने उसके गीतसे प्रसन्न हो लिङ्गके भीतरसे वरदान दिया, कि हे गन्धर्व्वदुहिते! आज रात्रिकालमें तुम्हारे समाननामक जो व्यक्ति तुम्हें रमण करेगा, वही तुम्हारा भर्त्ता होगा। रत्नावली लिङ्गरूप समुद्रसे उत्पन्न ऐसा वचनरूप अमृत पानकर अतीव लज्जिता और आनन्दिता हुईं। फिर सखीगणके साथ गगनपथसे पित्रालयमें गमन करती करती सखियोंसे निज विवरण व्यक्त करनेपर उन सभोंने "बहन! बड़े ही आनन्दका विषय है, बड़े ही आनन्दका विषय है" कहकर रत्नावलीका अभिनन्दन किया और कहा यदि रत्नेश्वरकी पूजाके फलसे तुम्हारा अभीष्ट सफल हो, यदि आज रातमें तुम्हारे कौमारहर चोर आगमन करें, तो तुम बाहुलतापाशसे आवद्ध कर रखना। जिसमें हम सब उन रत्नेश्वर निर्दिष्ट सुकृतिशाली तुम्हारे प्रियको प्रातःकाल ही देख सकें। बहन! तुम्हारा कैसा पुण्य है। हम सब भी तो गई थीं और सबने ही रत्नेश्वरकी निरीक्षण किया था, किन्तु पुण्यबलसे केवल तुमने ही उन्हें प्रत्यक्ष किया। जीवगणके अदृष्टकी कैसी महिमा है! पुण्यका कैसा गौरव है! एकत्र रहकर एक तरहका काम करने पर भी अदृष्टगुणसे एकको सिद्धि लाभ होती है। दैवप्राधान्यवादी व्यक्तिगण जो कहते हैं, कि दैव ही प्रबल है, वह सच है? कारण, देखती हैं, कि दैवके रहने ही से कार्य्य सफल होता है; उद्यम या अन्य किसी बलसे कोई फल नहीं होता। देखो, तुम और हम सभी एक कार्य्यमें उद्यत हुई थीं, किन्तु तुम्हारे अदृष्टमें जैसा फल हुआ, वैसा हम सबका नहीं हुआ। हे सखी! लोग जो बात बातमें अदृष्टको प्रधान कहते हैं, तुम्हारा मनोरथ सिद्धि ही उसका निदर्शन है। वह सब आपसमें इसतरह बातचीत करती करती अनन्तपथ भी मानो क्षणकालमें अतिक्रम कर अपने अपने भवनमें आईं। फिर प्रातःकाल एकत्र मिलकर वह सब मौनाश्रित रत्नावलीको मानो किसी पुरुषद्वारा उपभुक्ता समझीं। फिर उसी मौनभावसे रहकर सखीगणने साथ साथ काशीधाममें जा मन्दाकिनीजलमें स्नानके उपरान्त रत्नेश्वरलिङ्गका दर्शनकर उनकी पूजा की। फिर उस लज्जावनतमुखी रत्नावलीने वयस्यागणके नितान्त अनुरोधसे कहा, सखीगण! तुम्हारे अपने अपने घर

जानेपर, इन रत्नेश्वर का वचनामृत स्म-रण करती हुई विशेषरूपसे शृङ्गारादिकर मैंने शयन-मन्दिरमें प्रवेश किया। फिर यह विचारकर, कि उन्हें देखूंगी नयनद्वय मूंदे नहीं सही, किन्तु तथापि अवश्यम्भावी भवितव्यताके प्रभावसे सहसा मुझे स्वप्नावस्था उपस्थित हुई। तब उस आत्मविस्मरणके कारण तन्द्रा और उनके अङ्गस्पर्श इन दोनो ने मेरी ज्ञानशक्ति हरण की! फिर वैसे तन्द्रापरवश और उनके गात्रस्पर्श सुखसे जड़ित हो फिर क्या हुआ और मैं कौन और कहां हूं, वह कौन हैं, कुछ भी जान न सकी। हे सखीगण! फिर उनकी भवनसे निकलजानेमें उद्यत होनेपर धरनेके लिये जैसे ही कर प्रसारण किया, उसी समय हाथका कङ्कण मेरा शत्रु हो उत्कट शब्द कर उठा। उस शब्दसे मेरा सुखस्वप्न टूटा। तब मैं मानो सुखामृतहृदमें निमग्न हो फिर तत्क्षणात् उनके वियोगरूप अग्निशिखामें दग्ध होने लगी। हे सखीगण! उनका किस देशमें जन्म और क्या वंश है वा उनका नाम ही क्या है, यह कुछ भी मैं नहीं जानती; किन्तु, उनका निदारुण विच्छेदानल मुझे दग्ध करता है। दूसरी बार उनकी सङ्गमाशासे मेरा मन अति व्याकुल होता है और प्राण मानो बाहर होनेके लिये उपक्रम करता है। अब उन हृदयचोरका पुनर्दर्शन ही एकमात्र इसका महौषध है और उनका पुनर्दर्शन भी तुम्हारे आयत्त है। हे सखीगण! कोई रमणी प्रिय सङ्गिनीके निकट झूठ बोलती है? मैं निश्चय कहती हूं, कि यदि उन्हें फिर देख पाऊंगी, तभी जीवन रहेगा; नहीं तो नहीं। मेरी अभी भीषण दशमदशा उपस्थित होगी। उसकी सखीगण, नितान्त कातरा रत्नावलीकी ऐसी बात सुनकर भावी अमङ्गलाशङ्कासे कम्पितहृदय हो आपसमें देखादेखी करती हुई बोलीं, हे भद्रे! जिनका नाम और वंश कुछ भी जान नहीं सकती; उन्हें कैसे पावेंगी, उपाय हो क्या करें? रत्नावलीने सखीगणकी ऐसी सन्देहयुक्त बात सुनकर कहा, हे सखीगण! तुमभी उन्हे दिखानेमें कुण्ठ—ऐसा अर्द्धमात्र कहकर मूर्च्छित हुई, उस गन्धर्वबालाका वक्तव्य था, कि तुमलोग भी कुण्ठितशक्ति हुई। इसलिये "कुण्ठ" इतनाही उच्चारण किया था। फिर सखीगण शीघ्रतासे उसकी मोहशान्तिके लिये परम तापहारक विविध शैत्यक्रिया करने लगीं। किन्तु जब शीतल उपचारसे उसकी मूर्च्छा अपगत न हुई, तब एक सखीने रत्नेश्वरका चरणामृत लाकर गात्रमें सेचन करते ही वह उठी। वह सोकर उठनेवालों की तरह "शिव शिव शिव" कहकर उठी। स्कन्दने कहा, श्रद्धाशाली भद्रगणका महत् उपसर्ग उपस्थित होनेपर विश्वेश्वरके चरणोदकके सिवा दूसरा उपाय नहीं है, शरीरके अभ्यन्तर और वहि:सञ्चारक जितनी

पीड़ा दुःसाध्य है, श्रद्धापूर्वक शङ्करका चरणामृत स्पर्श करते ही निःसंशय वह उपशमित होती है। जो व्यक्ति सदा भगवान्‌का चरणामृत सेवन करते हैं, उनके देहाभ्यन्तर या बाहर किसी तरहकी दुर्गति उपस्थित नहीं होती। शङ्करका चरणोदक पान करनेसे आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक यह त्रिविधताप निर्वृत होते हैं। हे मुने! फिर गन्धर्व्वदुहिता रत्नावलीने परम स्नेहमयी सखीगणसे कहा, अयि शशिलेखे! अयि अनङ्गलेखे; अयि चित्रलेखे, तुम सब किसलिये सामर्थ्यविहीन हुई? तुम्हारी वह चतुःषष्टिकला विद्यामें अभिज्ञता कहां गई? रत्नेश्वरकी अनुग्रहसे प्राणेश्वरको पानेका एक उपाय मैंने स्थिर किया है; तुम सब मेरी परम हितैषिणी हो, इस समय मेरा हितसाधन करो। हे शशिलेखे! मेरे इष्टलाभके लिये तुम सुरगणको, हे अनङ्गलेखे! तुम धरातलवासियोंको और हे चित्रज्ञे! चित्रलेखे! तुम पातालतलवासियोंको चित्रित करो। जिनका अवयव नवयौवनसे सुशोभित हो, उन्हीं सब युवकोंका चित्र बनाओ। सखियोंने उसकी ऐसी बात सुनकर चातुर्य्यकी प्रशंसा करती हुई सब युवकोंकी प्रतिमूर्त्ति चित्रित करनेपर, गन्धर्व्वकन्या रत्नावली, प्रातःसन्ध्याकी तरह कौमारसौन्दर्य्य-शोभित उन सब पुरुषपङ्कजको अवलोकन करने लगी। समस्त सुरगणको देखकर उस सुलोचनाका नयनवाञ्छल्य दूर नहीं हुआ। फिर भूमण्डलवासी सब मुनिकुमार और राजकुमारके प्रति दृष्टिनिक्षेप करके भी प्रसन्नता लाभ कर न सकी। फिर दीर्घापाङ्गी वाला रत्नावलीने पातालवासी युवकोंके प्रति नयनद्वय पातित किये। मन्मथशर-पीड़िता जो गन्धर्व्वकुमारी, सुधाकरकरसे भी क्लेश अनुभव करती थी और समुदय क्षितिज और दनुज कुमारगणको देखकर भी जिसके तापकी कुछ शान्ति नहीं हुई, किन्तु कैसा आश्चर्य है! वह गन्धर्व्वदुहिता, चित्रगत होनेपर भी नागयुवकगणको अवलोकनकर, क्षणकाल मानो स्वच्छन्दता पाकर उल्लसिता हुई। फिर क्रम क्रमसे तक्षक, वासुकि, कुलिक, अनन्त, कर्कोट प्रभृति वंशजात सब नागयुवकोंको अलग अलग देखकर फिर रत्नचूड़को देखते ही परम लज्जित हुई और उसका सर्व्वाङ्ग रोमाञ्चित हो उठा। तब अति चतुरा चित्रलेखा, उसका ऐसा सलज्जभाव देख चित्तचोरको पहचान सकी। फिर उस परिहास-रसिका चित्रलेखाके, वस्त्राञ्चल द्वारा चित्रपटस्थित रत्नचूड़की प्रतिमूर्त्ति शीघ्र आवरण करनेपर रत्नावलीने लज्जासे अवनतमुखी हो चित्रलेखाके प्रति कुटिल कटाक्षपात किया और उसी समय उसका ओष्ठाधर कम्पित होने लगा। फिर शशिलेखाको नयनभङ्गि समझकर अनङ्गलेखाके पटाञ्चल अप-

सूत करनेपर, वसुभूतिदुहिता वह रत्नावली शङ्खचूड़वंशसम्भूत रत्नचूड़को सतृष्णनयनसे देखने लगी। तब उसके नेत्रयुगल आनन्द-वारिमें, गण्डस्थल स्वेदकणामें और अङ्गलतिका रोमाञ्चकञ्चुकमें समावृत हुई। ऐसी रत्नावली, क्षणकाल लोचनद्वय सङ्कुचितकर चित्रार्पितकी तरह बैठी रही। इसके उपरान्त चित्रलेखाने उसके पास उपस्थित हो अश्वासित करती हुई कहा अयि गन्धर्व्वकुमारि! प्रफुल्ल हो, मनोरथ पूर्ण हुआ है, हम तुम्हारे चित्तचोरका वंश नामादि जान गई हैं, अतएव हे सखि! अधिक विपन्न मत हो। रत्नेश्वरदत्त हृदयरत्नको अनायास ही पा सकोगी। भाग्यमें रत्नेश्वरने तुम्हें मनोगत पतिदानसे सन्तुष्ट किया है। अब उठो, चलो घर चलें; भगवान् रत्नेश्वर ही मङ्गल करेंगे। फिर वह चारों आकाशपथसे गृहकी ओर जा रही थीं, उसी समय पातालवासी सुबाहु नामक किसी दानवने उन सबको देख, विकटदशनाच बाघरो जैसे कुरङ्गीपर आक्रमण करता है, उसी तरह बलपूर्व्वक ग्रहणकर गृहाभिमुख धावमान हुआ। तब गन्धर्व्वकुमारीगण, उस रुधिरारुणनेत्र विकटानन दानवको निरीक्षणकर भयकम्पितहृदयसे कहने लगीं, हा तात! हा मातः! रक्षा करो, हे विधातः! हमलोगोंको अनाथा देख यह दुष्ट दानव अति निष्ठुर व्यवहार करनेपर उद्यत हुआ है, इससे परित्राण करो। हा दैव! हम अभागिनीने ऐसा क्या किया है? हमने कभी अन्तःकरणमें भी पापवार्त्ताकी चिन्ता नहीं की। बाल्यक्रीड़ा, रत्नेश्वरकी पूजा और पितामाताके उपदिष्ट कार्य्यके सिवा और कुछ नहीं जानतीं। हे सर्व्वान्तर्य्यामिन् रत्नेश्वर! हे प्रभो! इन पातालतलपतित, अनाथ, शरणार्थिनी बालिकाओंकी आपके सिवा और कौन रक्षा करेगा? फिर महामना नागराज रत्नचूड़ने उन सब गन्धर्व्वकुमारियोंका रत्नेश्वरोद्देशसे ऐसा विलापवाक्य सुनकर सोचा, "कौन मेरे अभीष्टदेव भवभयहारी, लिङ्गराज रत्नेश्वरका नाम लेता है?" फिर उन्होंने "हे रत्नेश्वर! रक्षा करो, रक्षा करो" बालिकामुखनिःसृत ऐसा आर्त्तनाद सुनकर अस्त्रशस्त्र ग्रहणकर अपने भवनसे निकल, वसासवपानसे और मांसभोजनसे अति उन्मत्त दुश्चेष्टित उस दानवको देख उन्होंने सगर्व्वसे भर्त्सना करते हुए कहा, अरे दुष्ट! शिष्टकन्यापहारिन्! अधम दानव! तू आज मेरे नेत्रपथमें पतित हो कहां भाग सकता है? रे दुर्म्मति! मैं विपन्न व्यक्तिके परित्राणार्थ बद्धपरिकर हुआ हूं; अब तू मेरे बाणप्रहारसे प्राणविसर्ज्जनकर यमसदनमें जा। निश्चय जान, जो प्रलयकालमें भी रत्नेश्वरका नाम उच्चारण करते हैं, उन्हें किसी तरहके भयकारणसे भी भय नहीं रहता। जो रत्नेश्वरके महानाम

द्वारा परिरचित होते हैं, अधिक क्या, जन्म, जरा, व्याधि और कलिकालसे भी उन्हें किसी तरहकी आशङ्का नहीं रहती। नागराजकुमार रत्नचूड़ने भयव्याकुल उन गन्धर्व्वदुहिताओंको शार्दूलसमाक्रान्त कुरङ्गीगणकी तरह मुंह देखते देख "तुमलोग कुछ भी भीत न होना" कहकर आश्वास प्रदानकर आकर्णपर्य्यन्त शरासन आकर्षणकर वाणनिक्षेप किया। फिर उस दानवराजने भी पददलित भुजङ्गवत् क्रुद्ध हो यमदण्डोपम एक भयङ्कर मूषल घुमाकर रत्नचूड़के उद्देशसे निक्षेप किया। किन्तु जिनके हृदयक्षेत्रमें सदा रत्नेश्वर विराजमान हैं, उनके निकट साक्षात् कालदण्ड भी अलातदण्डकी तरह लघु होता है। रत्नचूड़ने अर्द्धपथमें ही शरनिकरसे वह मूषल विच्छिन्नकर फिर उस दुर्व्वृत्तका जिससे प्राणविनाश हो, ऐसा एक शर तूणीरसे निकाल उसका उरःस्थल लक्ष्यकर परित्याग किया, वह शर उसकी प्राणवायुको अन्वेषणपूर्व्वक देहसे विच्युतकर पुनर्व्वार अपने यथास्थान उपस्थित हुआ। तब ज्ञान पड़ा, कि वह रत्नचूड़निक्षिप्त शर, दुर्व्वृत्त-दानवका हृदयगत दौरात्म्य प्रकृतरूपसे अवगत हो दिगङ्गनाओंसे कहनेके लिये ही मानो फिर प्रत्यावृत्त हुआ। जो व्यक्ति अधर्म्मोपार्ज्जित द्रव्यसे सुखभोगप्रत्याशा करते हैं, वह सब द्रव्य उनके जीवनके साथ इसी प्रकार नष्ट हो जाता है। फिर महाबलसम्पन्न नागराज रत्नचूड़ने, उस दानवको इसतरह विनाशकर उन लोगोंसे कहा, तुम सब कौन हो? किसकी दुहिता हो? और दुरात्मा दानवको कैसे मिल गई? तुमने कब रत्नेश्वरका दर्शन किया था? जिनके नामोच्चारणमात्रसे तुम्हारा समुद्र विपद् विदूरित हुआ है, उन सिद्धेश्वरका तुमने कब दर्शन किया था? यह सब विषय यथार्थरूपसे प्रकाश करो, जिससे मैं तुम्हें जान सकूं। गन्धर्व्वकुमारीगण उनकी ऐसी बात सुनकर परम प्रेमपूर्णहृदयसे आपसमें एक दूसरेका मुंह देखती हुई मृदुस्वरसे कहने लगीं, यह कौन हैं? ऐसा मालूम होता है, कि इन्हें कभी देखा है। यह कौन अकारणबन्धु प्रान्तरमें उपस्थित हुए? इन्होंने अपना जीवन पणकर हमसबका परित्राण किया है। इन्हें देखकर हमलोगोंकी इन्द्रियनिचय सहजचपल होकर भी मानो सुधापानसे मन्थर हुई हैं; हमारे लोचनद्वय, किसी रमणीय वस्तुको देखनेपर भी उत्सुक नहीं होते थे; श्रवणयुगल इनका वचनामृत पानकर दूसरा शब्द सुननेमें विमुख हुए हैं और हमारे मनोहृत्परतापहारी इन युवकको देखकर चपल चरणयुगल भी मानो पङ्गु हुए हैं। वह मृगलोचना बालिकागण अस्फुटस्वरसे आपसमें इसतरह बातचीत करने लगीं, किन्तु अति भीषणाकार दानवके भयसे

सम्यक् दर्शनशक्तिका ह्रास होनेसे वह रत्नचूड़को चित्रमें देखकर भी पहचान न सकीं। फिर वह जीवनरक्षक-युवक रत्नचूड़से कहने लगीं, महाशय! आपने स्नेहपूर्णहृदयसे जो सब विषय पूछे, वह हम कहती हैं; अवहित हो सुनिये। यह गन्धर्व्वराज वसुभूतिकी तनया हैं। इनका नाम रत्नावली है! यह गुणरूप रत्नकी आकरस्वरूप हैं। हम दोनो इनकी वयस्या हैं; हमलोग सदा छायाकी तरह इनकी अनुगामिनी रहती हैं यह बाल्यकालसे ही पिताका आदेश ग्रहणकर रत्नेश्वरके अर्चनार्थ काशीधाममें गई थीं। भगवान् शङ्करने प्रसन्न हो इनको यह वर प्रदान किया था, कि हे कुमारिके! तुम्हारे समनामा जो व्यक्ति स्वप्नमें तुम्हारा कौमारव्रत हरण करेंगे, वही भर्त्ता होंगे। फिर यह स्वप्नावस्थामें वैसे युवकको लाभ करके भी उनके विरहानलसे सन्तप्त हो अतिशय दुःख भोग करती हैं। उनका नाम धाम कुछ भी विदित नहीं था, फिर चतुःषष्टि कलाविषयमें अभिज्ञता होनेकी वजह उन्हें चित्रार्पितकर दिखाया था। चित्रगत होनेपर उनके दर्शनसे यह पुनर्ज्जीविता हुई थीं। एक दिन रत्नेश्वरको प्रणामकर घर जानेमें उत्सुक होनेपर हम दोनो इनके साथ आकाशपथसे जा रही थीं, उसी समय इस दैत्यने अतर्कितभावसे आकर हमलोगोंको ले पातालपुरमें प्रवेश किया। इसके उपरान्त उक्त दानवाधमके सम्बन्धमें जो कुछ है आप जानते हैं। महाशय! हमने आपसे यह आत्मविवरण व्यक्त किया; हे कृपानिधे! अब आप प्रसन्न होकर हम सबको भी अपना परिचय प्रदान करिये। हे भयत्राणकारिन्! इस दुष्ट दानवके दर्शनकी अवधिसे हम सबके नेत्र मानो विद्युताग्निसे दग्ध हुए हैं, हम सब कहां भागीं, कहां आई हैं, हम कौन हैं, आप ही कौन हैं और क्या हुआ है या होगा, कुछ भी समझमें नहीं आता। पवित्रचेताः पुण्यात्मा नागराजकुमार रत्नचूड़ने उन विह्वला गन्धर्व्वतनयाओंकी ऐसी बातें सुनकर आश्वास प्रदानकर कहा, मेरे साथ आओ! मैं तुम लोगोंको रत्नेश्वरका दर्शन कराजंगा। ऐसा कहकर रत्नचुड़ निर्म्मल सलिलपूर्ण क्रीड़ावापीमें उन लोगों को ले गये। मरालबालाकी मधुर ध्वनिपूर्ण उस वापीमें विचित्र मणिमय सोपानश्रेणी शोभा पा रही थी और उसकी चारो ओर विविध विहङ्गमगणके सुमधुर शब्दसे जान पड़ता था मानो वह सब सबसे स्वागतप्रश्न करते हैं। वहां वह गन्धर्व्वदुहितागण, रत्नचूड़के आदेशानुसार स्नानके उपरान्त फिर वस्त्र और पुष्पाभरणादि परिधान करती हुई बाहर निकलकर नागराजके समीपस्थ रत्नेश्वरका मन्दिर देखकर विस्मयपूर्ण हृदयसे क्षणकाल निस्तब्ध हो आ

पसमें कहने लगीं, हम सब स्वप्न देखती हैं, या यह सत्य घटना है? या रत्नेश्वरकी लीला है, या हमीं सब भ्रान्त हुई हैं, या हमलोग गन्धर्व्वकन्या नहीं हैं? जो हो, ऐन्द्रजालिकवत् हमारी समझमें तो कुछ भी नहीं आता। स्पष्ट ही तो दिखाई देता है। यह उत्तर वाहिणी गङ्गा हैं, शङ्खचूड़की वापी है, यह शङ्खचूड़का आलय है, यही पद्मनद-तीर्थ और यह वागीश्वरालय है, जिनके दर्शन मात्रसे वाग्विभूति प्रकाश पाता है। यह शङ्खचूड़ प्रतिष्ठित शङ्ख-चूड़ेश्वर हैं, इनका दर्शन करनेसे सब भय दूर होते हैं। यह पवित्र सलिलपूर्ण मन्दाकिनी नामक दीर्घिका है, जिसमें उदककार्य्य करनेसे मनुष्यको फिर मनुष्य-लोकमें प्रवेश करना नहीं पड़ता। यह आशापुरी नामक देवी हैं, शुभ मन्दाकिनी तटपर विराज रही हैं, पहले त्रिपुरा-सुरको जय करनेके अभिलाषसे त्रिपुरारिने इनकी बन्दना की थी और आजतक इनकी पूजा करनेसे मनुष्यकी सब आशा परिपूर्ण होती हैं। यह मन्दाकिनीके पश्चिम सिद्धाष्टकेश्वर हैं, जिनके पूजाफलसे यहमें अष्टप्रकार सिद्धि सिद्ध होती हैं! यह सुनिर्म्मलसलिल सिध्यष्टक नामक कुण्ड है, श्रद्धापूर्व्वक इसमें स्नान करनेसे मनुष्य मलहीन हो स्वर्गमें जाते हैं। यह हम सब मर्त्त्यरक्षित अष्टसिद्धि देखती हैं, यह काशीधाममें सर्व्वसिद्धि प्रदान करती हैं। यह सर्व्वसिद्धिप्रद महान् गणविनायक हैं, इनको प्रणाम करनेसे मनुष्योंके निखिलविघ्न दूर होते हैं। यह सिद्धेश्वरका काञ्चन-रत्नमय ध्वजपताकाशोभित समुच्च स्वर्ण-प्रासाद है, इनके दर्शन मात्रसे सिद्धि मिलती हैं। यह चैत्रकी मध्यम भागमें मध्यमेश्वर दिखाई देते हैं, मनुष्य इनका दर्शन करनेसे मर्त्त्यमें और मर्त्त्यके अधो-लोकमें वास नहीं करते और इनकी अर्च्चना करनेसे, आसमुद्रक्षितीश्वर हो परिणाममें मोक्षपद पाते हैं। इनके पूर्व्व अभीष्ट सिद्धिप्रद ऐरावतेश्वर नामक लिङ्ग दिखाई देते हैं, इनकी पताकामें मनोहर ऐरावत-गजमूर्त्ति शोभित है और यह वृद्धकाले-श्वरका रत्नमय प्रसाद है, यहां प्रति अमा-वस्यारात्रिको चन्द्रमा मानो तारकागणोंके साथ उदित होते हैं। इनके दर्शनसे निःसन्देह काल कलि और कल्मषराशि आक्रमण कर नहीं सकती। यह गन्धर्व्व-कुमारीगण, सम्यक्भ्रान्तकी तरह यों बातें कर रही थीं, इसी समय गन्धर्व्वराज वसुभूतिने देवर्षि नारदके मुखसे, प्रिय रत्नावली शून्यमार्गमें सखीगणोंके साथ आती आती सुबाहु नामक दानव द्वारा जैसे अपहृता हो पातालपुरमें नीता हुई, फिर जैसे रत्नेश्वरके परमभक्त महाधनुद्धर रत्नचूड़ने शराघातसे उसे विनाश किया और वृत्तान्त पूछनेके बाद जिस तरह

रत्नचड़ वापीकी राहसे उन्हें ले आये और वह बालिकागण रत्नचड़की पाताल पर्य्यन्त प्रसारिणी वापीमें प्रविष्ट हो जैसे निष्क्रामण पूर्व्वक काशीधामका दर्शनकर परम भ्रान्तियुक्त और विस्मयान्वित हुईं; इन सब बातोंसे अवगत हो, व्यग्रभावसे आकर देखा, सखीगणके साथ नवजीविताकी तरह रत्नावलीके मुखपङ्कजका मनोहर सौन्दर्य्य, ईषत् म्लान हुआ है। फिर बारबार उसे आलिङ्गनकर उसका कपोलतल चुम्बन करते हुए गोदमें ले सादर समस्त विवरण पूछा। फिर रत्नावलीके स्वप्नवृत्तान्तके सिवा रत्नेश्वरके वरलाभ और दानवविवरण प्रकट करनेपर गन्धर्व्वाधिपति वसुभूति, मुखभङ्गिसे रत्नावलीका मनोभाव पहचानकर उसकी सखी शशिलेखासे स्पष्टाचरमें सविशेष समाचार पूछकर परम सन्तुष्ट हुए और आनन्दके साथ रत्नेश्वरका माहात्म्य वर्णन करने लगे। स्कन्दने कहा, हे विन्ध्यवृद्धिविबन्धन मुनिश्रेष्ठ! रत्नचूड़का विषय सुनो पहले उक्त रत्नचूड़ भी संयत रह नित्य उस वापीमार्गसे पाताल-तलसे आकर मन्दाकिनी जलमें स्नानके उपरान्त रत्नेश्वरकी अर्च्चनाकर अष्ट रत्नाञ्जलि और अष्ट सुवर्णाञ्जलि दान करते थे। एक दिन रत्नेश्वरने लिङ्गरूपमें स्वप्नावस्थामें अपने भक्त दृढ़व्रत रत्नचूड़से कहा, तुम संग्राममें किसी दानवको पराजयकर उसके द्वारा अपहृत जिस कन्याको मुक्त करोगे, वही तुम्हारी पत्नी होगी। फिर वह महामना नागराज रत्नचूड़, सदा वह वरवृत्तान्त स्मरण करते हुए अपने भुजबलसे सुबाहु दानवको पराजयकर गन्धर्व्वकन्या रत्नावलीको विमुक्तकर वापीमार्गसे फिर महीतलमें ले आये और आप भी प्रतिदिन प्रतिपालन करते थे। फिर वह सुधी रत्नचूड़, रत्नेश्वरकी अर्च्चना और प्रदक्षिणाकर उनके मण्डपसे जैसे ही बाहर निकले, उसी समय रत्नावली प्रभृति गन्धर्व्व दुहितृगणने गन्धर्व्वराज वसुभूतिसे "यही वह धन्य युवक हैं" कहकर तर्ज्जनीके अगले भाग द्वारा रत्नचूड़को दिखा दिया। तब नागराजकुमारको देख गन्धर्व्वराजका लोचनद्वय प्रफुल्ल और आनन्दसे शरीर कण्टकित हो उठा। उन्होंने मन ही मन उनके रूप-यौवनादिकी यथेष्ट प्रशंसा करते हुए सोचा, मैं धन्य हूं! रत्नेश्वरके वरप्रदानसे यथार्थ ही मैं अनुगृहीत हुआ हूं और मेरी यह कन्या भी धन्या है, कारण, अनुरूप पति पाया। गन्धर्व्वराजने मन ही मन ऐसी चिन्ताकर "इनको ही कन्यादान करना श्रेयःकल्प है" ऐसा स्थिर करते हुए रत्नचड़का नाम गोत्रादि पूछनेके उपरान्त ग्रहादिकी बलाबल गणनाकर उन्होंने रत्नेश्वरके सामने आनन्दके साथ रत्नचड़को रत्नावली दान की।

रत्नचूड़को गन्धर्व्वलोकमें ले जाकर महासमारोहसे मधुपर्कादि द्वारा अर्च्चनाकर यथाविधि विवाहकार्य्य समाप्त किया और वैवाहिक विधि अनुसार जामाताको प्रभूत धनरत्न दान किया। हे कुम्भयोने! फिर शशिलेखा अनङ्गलेखा और चित्रलेखाने भी अपने अपने पिताको अनुमति अनुसार रत्नचूड़को पतित्वमें वरण किया। फिर रत्नचूड़ चतुःसंख्यक परमसुन्दरी गन्धर्व्वनन्दिनीको यथाविधि-ग्रहणकर, श्रुतिचतुष्टयसमन्वित प्रणवकी तरह उन सबके साथ पितृभवनको गये। फिर नववधुओंके साथ पिता माताके चरणमें प्रणामकर रत्नेश्वरका अनुग्रह वृत्तान्त वर्णन करते हुए उनके द्वारा अभिनन्दित हो पत्नीगणके साथ परमसुखसे अवस्थान करने लगे। शङ्करने कहा, हे गिरिजे! सबके सर्व्वाभीष्टप्रद मेरे स्थावररूपी रत्नेश्वरलिङ्गके प्रभावकी तुलना नहीं। पहले सहस्र सहस्र व्यक्ति इन लिङ्गके प्रसादसे सिद्धि पाते थे। इतने दिनतक यह लिङ्ग छिपे हुए थे। हे गिरिराजनन्दिनि! मेरे भक्त तुम्हारे पिताने ही निज पुण्यार्ज्जित रत्नराशिसे रत्नेश्वर नामक इन लिङ्गको प्रकाश किया। मैं इन लिङ्गमें परम प्रीतिमान् हूं; इस वाराणसीमें सबका ही भक्तके साथ इनकी पूजा करना कर्त्तव्य है। हे प्रिये उमे! रत्नेश्वरकी अनुग्रहसे नानाविध स्थावररत्न और स्त्रीरत्न, पुत्ररत्नादि, अधिक क्या,

स्वर्ग और मोक्ष पर्य्यन्त मिलता है। जो व्यक्ति, इस काशीधाममें रत्नेश्वरको प्रणामकर स्थानान्तरमें भी प्राणत्याग करते हैं उन्हें फिर शतकोटि कल्पमें भी मर्त्त्यभूमिमें आना नहीं पड़ता। हे देवि! रत्नेश्वरके पास कृष्णचतुर्द्दशीको उपवासी रह रातजागरण करनेसे मेरा सालोक्य लाभ होता है। हे प्रिये! इन रत्नेश्वरके पूर्व्वांशमें पूर्व्वजन्ममें तुमने दाक्षायणीश्वर नामक लिङ्ग प्रतिष्ठित किया था, उनका दर्शन करनेसे मनुष्य फिर कभी दुर्गति नहीं पाते। हे समध्यमे! वहां तुम अम्बिकागौरी नामसे और मैं अम्बिकेश्वर नामसे अवस्थित हूं और तुम्हारे पुत्र षड़ानन भी मूर्त्तिमान हैं। उक्त मूर्त्तित्रयका दर्शन करनेसे फिर गर्भयन्त्रणा भोगना नहीं पड़ती। हे उमे! मैंने तुमसे रत्नेश्वरकी महिमा कही। कलुषचित्त मनुष्योंसे इसे सम्पूर्णभावसे छिपाना चाहिये। जो व्यक्ति सदा यह रत्नेश्वर उपाख्यान पढ़ेंगे, उन्हें कभी पुत्रपौत्रादि और पालित पशुगणका वियोगदुःख भोगना न पड़ेगा। जो व्यक्ति, इतिहासके साथ रत्नेश्वरकी उत्पत्तिकथा सुनेंगे वह अविवाहित होनेपर निःसन्देह वंश नुरूप स्त्रीरत्न पा सकते हैं और कन्या यदि श्रद्धाके साथ इतिहास सहित यह मनोहर उपाख्यान सुनेंगी, तो सत्पति पानेमें चरितार्थ और पतिव्रता होंगी। पुरुष हों या स्त्री, इस इतिहासको सुननेसे कभी

आत्मीयजनके वियोगरूप अग्नितापसे उन्हें दुःख होना नहीं पड़ता।

सप्तषष्टितम अध्याय समाप्त ॥ ६७ ॥

अष्टषष्टितम अध्याय।

रत्नेश्वरमहिमा।

स्कन्दने कहा, हे विपेन्द्र! वहांका और एक महापापनाशक महाविस्मयकर विवरण सुनो। इस तरह महेश्वर रत्नेश्वरका विषय कह रहे थे, उसी समय चारो ओरसे "हा तात! हा तात!" ऐसा भयङ्कर कोलाहल उठा। फिर सुना, सबलोग कहते हैं, कि निजभुजबलदर्पित, महिषासुरपुत्र गजासुर, सब प्रमथगणको प्रमथित करता हुआ आ रहा है। यह गजासुर जहां जहां पादक्षेप करता है, वहीं उसके देहभारसे पर्व्वतश्रेणी कम्पित, पादताड़नसे शैलशिखर और सब तरु, भूमिशायी, शुण्डाघातसे पर्व्वतनिचय चूर्णित और मस्तकवर्षणसे मेघमाला गगनाङ्गणसे पतित होती हैं। उसकी निश्वासवायुसे सब महासमुद्र भी उत्तालतरङ्गमालासे समाकुल और तिमिगणके साथ निम्नगानिचयका महावेग भी स्तम्भितप्राय होता है। उस महावीरका शरीर ऊर्द्धमें और प्रस्थमें नौ सहस्र योजन परिमित है। उसके नेत्रद्वयकी पिङ्गलता और तरलतासे तड़िन्माला भी पराजित होती है। यह दुर्द्दम दानव जहां जहां जाता है, वहीं सब भयसे मानो स्थिर भाव धारण करते हैं। ब्रह्माके पाससे कन्दर्पपीड़ित स्त्रीपुरुषोंके अवध्यतारूप वरलाभसे त्रिजगत्को तृणकी तरह समझता हुआ वह चला आ रहा था। फिर भगवान् शूलपाणिने, उस दैत्यपुङ्गवको आते देख, दूसरेके अवध्य समझ त्रिशूलाघातसे विद्धकर उसे ऊर्द्धमें उठा लिया। तब उस दैत्यवर गजासुरने, अपनेको छत्रवत् ऊर्द्धमें अवस्थित देख भगवान् शङ्करसे कहा, हे त्रिशूलपाणे! हे देवेश! कन्दर्प आपको पीड़ित क्या करेगा, आपने जो उसे संहार किया है, वह मैं जानता हूं। हे पुरान्तक! किन्तु आपके हाथसे निधन होना मैं श्रेयःकल्प समझता हूं। हे मृत्युञ्जय! इस समय आपसे कुछ निवेदन करनेकी इच्छा करता हूं, आप अवहित हो सुनिये। मैं सच कहता हूं या झूठ, इसका विचार आप ही कीजिये। हे देव! आप त्रिजगत्के वन्दनीय और सबके ऊपर स्थित हैं, किन्तु मैं आज आपके त्रिशूलाग्रमें अवस्थित हो आपके भी ऊपर स्थित हुआ हूं, इसलिये मेरी ही जय है। देखिये समयसे सबको ही मरना होगा, अतएव ऐसी मृत्युके श्रेयस्कर होनेमें क्या सन्देह है? हे कृत्तियोने! परम कारुणिक देवादिदेव शम्भुने गजासुरकी ऐसी बात सुनकर हंसते हुए कहा, हे महापुरुषनिधे! गजासुर!

मैं तुम्हारी सुमति देखकर परम प्रसन्न हुआ हूं, तुम अभिलषित वरकी प्रार्थना करो, मैं दूंगा। उस दैत्यने शङ्करकी ऐसी बात सुनकर कहा, हे दिगम्बर! यदि प्रसन्न हुए हैं, तो हे विरूपाक्ष! मेरा यह सुप्रमाण और सुखस्पर्श रणाङ्गणका पणास्वरूप गात्रचर्म्म अपने त्रिशूलसे उठाये हुए सदा परिधान करिये। जिसमें यह आपके प्रसादसे सदा सद्गन्धयुक्त, कोमल निर्म्मल और मङ्गलमय रहे। हे प्रभो! जिस हेतु यह असीमकाल महत् तपस्यारूप अग्निशिखामें भी दग्ध नहीं हुआ, इसलिये इसमें संशय नहीं, कि इसका असीम पुण्य है। हे दिगम्बर! यदि मेरे इस गात्रचर्म्मका अधिक पुण्यसञ्चय न होता, तो संग्रामक्षेत्रमें कैसे आपका अङ्गसंसर्ग लाभ होता? हे शङ्कर! यदि मेरे प्रति तुष्ट हुए हैं, तो दूसरा कोई वर भी दान करिये। तब भगवान् शशाङ्कशेखरने भक्तिपूर्ण निर्म्मल हृदयसे फिर उस दैत्यसे कहा, हे पुण्यनिधे! तुम्हें दूसरा सुदुर्लभ वर प्रदान करता हूं, सुनो। जब तुम इस मुक्तिसाधन अविमुक्त महाक्षेत्रमें कलेवर विसर्ज्जन करोगे, तब तुम्हारा यह शरीर यहां सबका मुक्तिप्रद मेरा लिङ्गरूप धारण करेगा; महापापनाशन इस लिङ्गका नाम कृत्तिवासेश्वर और यह समुदय लिङ्गमें प्रधान होगा। हे साधो! इस वाराणसीमें जितने महालिङ्ग हैं, उनमें प्राणियोंका मस्तक जैसे श्रेष्ठ है, उसी तरह कृत्तिवासेश्वर भी श्रेष्ठ होंगे। मनुष्योंके मङ्गलार्थ मैं उस लिङ्गमें पार्व्वतीके साथ अवस्थान करूंगा। मनुष्य उस लिङ्गका दर्शन, पूजन और उसकी स्तुति करनेसे कृतकृत्य हो फिर संसारमें प्रवेश न करेंगे। शान्त, दान्त, जितक्रोध, निर्द्वन्द्व और निष्परिग्रह जो सब रुद्र, पाशुपत, सिद्ध, ऋद्धि और तत्त्वदर्शिगण, यहां अवस्थान करें और जो मान और अपमानमें, लोष्ट्र और काञ्चनमें समज्ञान रखते हैं, जो ऐसे सब मेरे भक्त मनुष्यगण इस अविमुक्तक्षेत्रमें देहत्याग करेंगे उनपर अनुग्रह करनेके लिये मैं उस लिङ्गमें अवस्थित रहूंगा। प्रतिदिन प्रातः, मध्याह्न और सायंकालको इन कृत्तिवासेश्वरमें दशकोटिसहस्र तीर्थ निःसन्देह उपस्थित होंगे। कलि और द्वापरयुगमें समुद्भूत जो मनुष्य, पापमति, सदाचारविहीन, सत्य और शौच पराङ्मुख, लोभ, मोह, दम्भ, अहङ्कार और मायासे आच्छन्न हैं और जो ब्राह्मण, शूद्रान्नसेवी, पेटुक, स्नाह्निक और जप-माल्यादिसे विमुख होंगे, वह भी पवित्र कृत्तिवासेश्वरका दर्शनादि करनेसे पुण्यात्माकी तरह सुखसे मोक्षपद पा सकेंगे। इसलिये काशीमें कृत्तिवासेश्वर लिङ्ग मनुष्योंके सेव्य होंगे। जो मोक्षपद दूसरी जगह अति दुर्लभ होता

है, कृत्तिवासेश्वरके पास एक जन्ममें ही वह उसके अधिकारी होंगे। तपोदानादि कार्य्योंमें पहले जन्मकृत पातक क्रमसे नष्ट होते हैं, किन्तु कृत्तिवासेश्वरके दर्शनसे वह शीघ्र ही विलीन होते हैं। जो कृत्तिवासेश्वर लिङ्गकी अर्चना करेंगे, वह मेरे शरीरमें प्रविष्ट होंगे, उन्हें फिर जन्म लेना न पड़ेगा। मनुष्यमात्रका ही इस अविमुक्तक्षेत्रमें वास, शत रुद्रमन्त्र जप और बारबार कृत्तिवासेश्वरका दर्शन करना कर्त्तव्य है। शतकोटि महारुद्रमन्त्र जपसे जो फल होता है, काशीधाममें केवल कृत्तिवासेश्वरकी पूजा करनेसे ही ऐसा फल होगा। जो मनुष्य माघमासीय कृष्णाचतुर्द्दशीको कृत्तिवासेश्वरकी अर्चना करेंगे, वह परम गति पावेंगे और जो मनुष्य चैत्रमासकी पूर्णिमाको कृत्तिवासेश्वरका महोत्सव करेंगे, उन्हें फिर गर्भमें प्रवेश करना न होगा। देवाधिदेव दिगम्बरने ऐसा कह गजासुरका वृहत् गात्रचर्म्म ग्रहणकर परिधान किया। हे कुम्भयोने! जिस दिन देव दिगम्बरने गजासुर का कृत्ति (चर्म्म) परिधानकर कृत्तिवास नाम धारण किया, उस दिन वहां महामहोत्सव हुआ था और जहां शूलविद्ध गजासुरको छत्र तुल्यकर त्रिशूलप्रोथित किया था, फिर वह त्रिशूल उखाड़नेपर वहां अतिमहत् एक कुण्ड समुत्पन्न हुआ। मनुष्य इस कुण्डमें स्नानके उपरान्त पितृतर्पण समापनकर कृत्तिवासेश्वरका दर्शन करनेसे परम कृतकृत्य होंगे। स्कन्दने कहा, हे अगस्त्य! अब इस तीर्थमें जो घटना हुई थी, वह सुनो! उसके प्रभावसे काकगणने भी हंसरूप धारण किया था। एक दिन चैत्रमासकी पूर्णिमा तिथिको कृत्तिवासेश्वरका उत्सव होता है। इस उत्सवमें कितने ही देवगणने नानाविध उपचारके साथ राशीकृत अन्न प्रस्तुत किया। यह देखकर विविध विहङ्गमगणने मिलकर उस अन्नके लिये आकाशमार्गमें आपसमें घोर संग्राम किया था। फिर हृष्टपुष्टाङ्ग बलवान् काकगणके चञ्चुप्रहारसे अपुष्टाङ्ग काकनिचयने आहत हो गगनाङ्गणसे उस कुण्डमें पतित होते ही, अवशिष्ट आयुः रहनेसे उस देहमें ही हंसरूप धारण किया। तब जो लोग इस उत्सवमें समवेत हुए थे, वह यह देख आश्चर्यान्वित हो आपसमें उंगली दिखाकर कहने लगे, अरे देखो देखो क्या अद्भुत है! देखते देखते उन वायसनिचयने कुण्डमें पतित हो तीर्थ प्रभावसे हंसत्व लाभ किया। हे कलशोद्भव! उस दिनसे ही कृत्तिवासेश्वरके समीपस्थित यह तीर्थ हंसतीर्थके नामसे जगत्में विख्यात हुआ है। सदा घोर पापाचरणसे जिनकी आत्मा नितान्त मलिन हुई है, वह भी इस तीर्थमें स्नान करनेसे तत्क्षणात् निर्म्मलता पाते हैं।

सदा काशीधाममें वास, हंसतीर्थमें स्नान और कृत्तिवासेश्वरका दर्शन करना सब-का कर्त्तव्य है; ऐसा करनेसे परमपद मिलता है। हे मुने! इस काशीधाम-के नानास्थानमें अनेकानेक शिवलिङ्ग हैं सही, किन्तु उक्त कृत्तिवासेश्वरलिङ्ग और सब लिङ्गके उत्तमाङ्ग स्वरूप हैं। का-शीधाममें भक्तिपूर्ण हृदयसे एक कृत्ति-वासेश्वरकी आराधना करनेसे ही दूसरे सब लिङ्गका आराधनाजनित पुण्यफल मिलता है। कृत्तिवासेश्वरके पास तपस्या दान, होम, तर्पण और देवपूजा करने-से, वह अनन्त फलजनक होता है। हे कुम्भयोने! यह तीर्थ अनादिसिद्ध है, केवल भगवान् महेश्वरके सान्निध्यसे फिर आविर्भूत हुए हैं। यह सब लिङ्ग युग युगमें अन्तर्हित और फिर शङ्कर-सान्निध्यमें आविर्भूत होते हैं। हे मुने! उक्त हंस-तीर्थकी चारो ओर महामुनिगणप्रतिष्ठित काशीवासी मनुष्योंके सिद्धिप्रद, कात्या-यनेश्वर, च्यवनेश्वर, और लोमशस्था-पित महालिङ्ग लोमशेश्वर प्रभृति विंश-ताधिक अयुत संख्यक शिवलिङ्ग विराज-मान हैं। कृत्तिवासेश्वरके पश्चिमांश-स्थित इन लोमशेश्वरका दर्शन करने-से यमभय दूर होता है। कृत्ति-वासेश्वरके उत्तर अवस्थित शुभ मा-लतीश्वर नामक महत् लिङ्गकी अर्चना करनेसे मनुष्य प्रभूतकुञ्जराधिपति राजा होते हैं। कृत्तिवासेश्वरके ईशान कोणमें अन्तकेश्वर नामक लिङ्ग हैं; अति पापात्मा भी उनके दर्शनसे निष्पाप होते हैं। उनके पास ही परमज्ञानदायक जनकेश्वर नामक एक महालिङ्ग अवस्थित हैं; उनकी सेवा करनेसे ब्रह्मज्ञान मिलता है। उनके उत्तर गलिताङ्ग नामक महामूर्त्ति भैरव हैं, जो उनका दर्शन करते हैं, उन्हें फिर यमका मुंह देखना नहीं पड़ता। वहां ही कृत्तिवासेश्वरके उत्तर विकटलोचना, शुष्कोदरी एक देवी अवस्थित रह सदा काशीधामके सब विघ्नोंको भक्षण करती हैं। इन देवीके नैऋत अग्निजिह्व नामक एक वेताल हैं, मङ्गलवारको अर्च्चित होनेसे वह अभीष्ट फल दान करते हैं। वहां ही सर्व्वव्याधिविनाशन एक वेतालकुण्ड है; इस कुण्डका जल स्पर्श करते ही व्रण और विस्फोटकादि विदूरित होते हैं। जो व्यक्ति उक्त वेतालकुण्डमें स्नानकर वेतालको प्रणाम करते हैं, वह परम दुर्लभ अभीष्ट-सिद्धि पाते हैं। यहां द्विभुज, चतुष्पाद, पञ्चशीर्ष एक गण हैं, उनके दर्शनमात्रसे पापराशि सहस्रधा विदीर्ण होती है। हे मुने! उनके उत्तर चतुःशृङ्ग, त्रिपाद, द्विशीर्ष, सप्तहस्त, अति भीषण वृषाकार रुद्र हैं; हे कुम्भयोने! जो काशीका विघ्नाचरण करते हैं और जो पापमें निरत हैं, उन लोगोंको पापराशि छेदनके लिये वह कुठारहस्तसे सदा चीत्कार करते हैं

और जो काशीका विघ्न निवारण करते हैं और सदा धर्मानुष्ठानमें निरत हैं, उनके वंशको वह सुधापूर्ण घट द्वारा अभिषिक्त करते हैं। जो मनुष्य उन वृषरूपी रुद्रदेवके दर्शनके उपरान्त भक्तिके साथ विविधोपचारसे उनकी अर्चना करते हैं, उनपर कभी किसी तरहका विघ्न आक्रमण कर नहीं सकता। उक्त रुद्रदेवके उत्तर मणिप्रदीप नामक नाग और उनके सामने परम विषव्याधिहर मणिकुण्ड नामक एक कुण्ड है। जो व्यक्ति इस कुण्डमें स्नानकर उक्त नागका दर्शन करते हैं, वह मणि माणिक्य परिपूर्ण, गज-अश्व-रथ-सङ्कुल, स्त्रीरत्न पुत्ररत्नसे समृद्ध ऐश्वर्य पाते हैं। जिन्होंने काशीस्थित कृत्तिवासेश्वरका दर्शन नहीं किया, उन मनुष्योंने निःसन्देह केवल वसुन्धराको भाराक्रान्त करनेके लिये ही जन्म ग्रहण किया है। इस स्थानमें जो मनुष्य कृत्तिवासेश्वरका उत्पत्तिविवरण सुनेंगे इसमें सन्देह नहीं, कि वह उक्त लिङ्गके दर्शनकी अपेक्षा अधिक फल पावेंगे।

अष्टषष्टितम अध्याय समाप्त॥६८॥

एकोनसप्ततितम अध्याय।

लिङ्गविवरण।

स्कन्दने कहा, हे अगस्त्य! तपोराशे! काशीधाममें जो सब लिङ्ग सेवित होनेपर पवित्रात्मा मनुष्योंको मुक्तिप्रद होते हैं, मैं उनका विवरण कहता हूं, सुनो। पहले महेश्वरने जहां गजासुरका चर्म्म परिधान किया, सर्व्वसिद्धिप्रद वह स्थान रुद्रावासके नामसे विख्यात हुआ। इस रुद्रावासमें भगवान् कृत्तिवास, स्वेच्छाक्रमसे उमाके साथ रहने लगे। किसी समय नन्दीने आ प्रणामकर निवेदन किया, कि हे देवदेवेश! हे विश्वेश! यहां इस समय सर्व्वरत्नमय सुरम्य सुमहत् अष्टाधिक षष्टि प्रासाद विराजमान हैं और भूर्लोक, भुवर्लोक, और स्वर्लोकस्थित सब मुक्तिप्रद शुभ शिवलिङ्ग मैं इस काशीधाममें ले आया हूं। हे नाथ! जहांसे जिनको ले आया हूं और जहां स्थापित किया है, वह कहता हूं, क्षणकाल अवहित हो सुनिये। कुरुक्षेत्रसे देवदेवके मोक्षप्रद स्थाणु नामक महालिङ्ग यहां समुद्भूत हुए हैं, वहां कलामात्रसे अवशिष्ट हैं। उनके सामने लोलार्कके पश्चिम, सन्निहती नामक शुभप्रद महापुष्करिणी है, वही कुरुक्षेत्र-स्थली है। शुभार्थी व्यक्तिगण वहां जो कुछ स्नान, दान, जप, होम और तपस्यादि करते हैं, कुरुक्षेत्रकी अपेक्षा उसका कोटि कोटि गुण अधिक फल होता है। हे विभो! देवदेव नामक महालिङ्ग ब्रह्मावर्त्त कूपके साथ नैमिषक्षेत्रमें अंशमात्र रख, वहांसे काशीधाममें आविर्भूत हुए हैं। ढुंढिराजके उत्तर साधकगणके सिद्धिप्रद वैकुण्ठदेव नामक लिङ्ग और उनके सामने